प्रक्कथन

वायुमंडलमें कौन-कौनसे गेस हैं, इसकी ऊँचाई कितनी है, जो गेस नीचे मिलते हैं वे ही ऊपर भी मिलते हैं या कोई परिवर्तन हो जाता है, बादल कितने ऊँचे होते हैं, बादलोंमें बिजली कैसे उत्पन्न होती है, इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरका पता लगानेकी खोजमें मनुष्य बहुत दिनोंसे लगा है, पता लगाता रहा है, और खोजके लिये अनेक यंत्र भी बनाता रहा है। परन्तु इस खोजका महत्व जितना आजकल बढ़ा है इतना पहले नहीं था, और आज कलके साधन भी नहीं थे। जबसे आकाशवाणी चली है मनुष्य यह जानना ही चाहता था कि वाणी इतने दूर-दूर स्थानोंके बीचमें कैसे जाती है क्योंकि ऐसी खोजसे उसको यह भी पता चल सकता है कि सदैव जा सकती है या कोई ऐसे अवसर भी होते हैं कि जब जाना बन्द हो सकता है। इन्हीं आकाश-वाणी-लहरों द्वारा आज कल दृश्य भी भेजे जाते हैं, प्रयाग में बैठे-बैठे आगरेमें होता हुआ टैनिस मैच भी देखा जा सकता है। हवाई जहाज़ (वायुयान) भी चलते हैं जिनमें चलने वालोंके लिये तो वायुमंडलका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। उनको यह जानना बहुत ज़रूरी है कि कितनी ऊँचाई पर कैसा तापक्रम और क्या-क्या गेस मिलेंगे जिससे अपनी

रक्षाका प्रबन्ध कर सकें। इस पुस्तकमें इन विषयोंके संबंध का बहुतसा ज्ञान और उस ज्ञानके पानेके साधनोंका वर्णन डा० कल्याण बख्श माथुर ने बहुत ही सरलता और विद्वत्ता के साथ किया है। आशा है कि पाठकगण पुस्तकको केवल रोचक ही नहीं, उपयोगी भी पावेंगे।

पुस्तकके अंतमें जो शब्द कोश लगाया है उससे भी पाठकोंको बड़ी सुविधा होगी। यह पुस्तक डा० माथुर ने एमप्रेस विक्टोरिया रीडरकी हैसियतसे लिखी है। इस रीडरशिपका एक उद्देश्य यह भी है कि हिन्दीमें ऐसी पुस्तकें लिखी जावें जिनसे वैज्ञानिक साहित्यकी वृद्धि हो। इस पुस्तकसे इस उद्देशकी भी पूर्ति होती है।

फिजिक्स डिपार्टमेन्ट
इलाहाबाद यूनीवर्सिटी
८ जुलाई १९४०

सालगराम भार्गव

विषय-सूची

अध्याय	पृष्ठ
१—विषय प्रवेष	६
२—निचला वायुमंडल	२०
३—ऊर्ध्वमंडलकी उड़ानें	४७
४—आयनमंडल	८६
५—वायुमंडलका तापक्रम	१५६
६—वायुमंडलकी बनावट	१६८
शब्द कोश	१८२

लेखकके दो शब्द

इस पुस्तकके लिखनेमें लेखकको प्रो० सालगराम जी भार्गव, डा० गोविन्दरामजी तोपनीवाल, और श्री रामनिवास रायजीसे विशेष सहायता मिली है। इन सज्जनोंने पाण्डुलिपिके देखने का कष्ट किया और उचित परामर्श दिये अतः लेखक इनका अत्यन्त कृतज्ञ है। लेखक विज्ञान परिषद्के अधिकारियोंका भी आभारी है जिन्होंने पुस्तक प्रकाशनमें विशेष रुचि ली। प्रयाग विश्व-विद्यालयने लेखकको इस विषय पर खोजें करनेका अवसर प्रदान किया, और इस पुस्तकके लिये प्रोत्साहित किया, अतः लेखक विश्वविद्यालयका भी कृतज्ञ है।

अध्याय १

विषय प्रवेश

प्राणि-मात्रके जीवित रहनेके लिये जिन-जिन वस्तुओंकी आवश्यकता है उनमें वायु सबसे मुख्य है। मनुष्य निराहार तथा निर्जल तो कई दिनों तक लगातार रह सकता है परन्तु बिना वायु कुछ मिनट भी जीवित रहना असम्भव है। वायुमें जो ओषजन (ऑक्सीजन) गैस है वह तो मनुष्य-मात्रके सांस लेनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है ही, वायुमें और जो गैसें हैं वे भी इससे किसी तरह कम आवश्यक नहीं हैं। नोषजन (नाइट्रोजन) पेड़ पौधोंके जीवनके लिये बहुत ही उपयोगी है। भारतवर्षकी भूमि कम उपजाऊ होनेका एक मुख्य कारण इसमें नोषजनकी कमी भी है। कर्बन द्वि-ओषिद (डाइऑक्साइड) के बिना पेड़ पौधे इतने बड़े हो ही नहीं सकते। इसीसे इनकी देह बनती है तथा इनमें हरियाली छाई रहती है। और यह तो सब जानते ही हैं कि पानी बिना न तो पेड़ पौधे उग सकते हैं और न कोई प्राणी

जीवित रह सकता है। अतः वायुका हर एक भाग हमारे बहुत काम का है। पृथ्वीके चारों तरफ वायु काफी ऊँचाई तक फैली हुई है और इसी भागको वायु-मंडल कहते हैं।

जिस विज्ञान-शास्त्रमें वायु-मंडल और इसकी गति आदिके विषयका वर्णन होता है उसे अंतरिक्ष-विज्ञान (meteorology) कहते हैं। अभी यह शास्त्र अपनी शैशव-अवस्थामें है। जो वैज्ञानिक इस विषयपर खोज कर रहे हैं वे अधिकतर भिन्न-भिन्न स्थानों पर, दिनके भिन्न-भिन्न समय, तथा तमाम वर्षके लिये ताप-क्रम दबाव और आर्द्रताकी मापोंका संग्रह करते हैं। परन्तु पृथ्वीकी सतहके सब स्थानोंमें इन चीज़ोंके एक-सा न होनेके कारण इन मापोंका संग्रह इतना जटिल हो जाता है कि इनसे एक साधारण नियम निकालना कि इन सबका स्थान तथा समयके साथ किस तरहसे परिवर्तन होता है, बहुत कठिन है। इसीलिये कुछ वैज्ञानिकों ने सोचा कि यदि हम पृथ्वीसे चार-पाँच मील ऊपर वायु-मंडलके लिये इन मापोंका संग्रह करें तो काफी सुविधा हो और इस तरहसे ऊपरी वायु-मंडलकी खोज करनेका विचार वैज्ञानिकोंको आया। चित्र १ में यह बताया गया है कि वायुमंडलमें कैसा-कैसा है तथा वह भिन्न-भिन्न भागोंमें विभाजित किया जा सकता है।
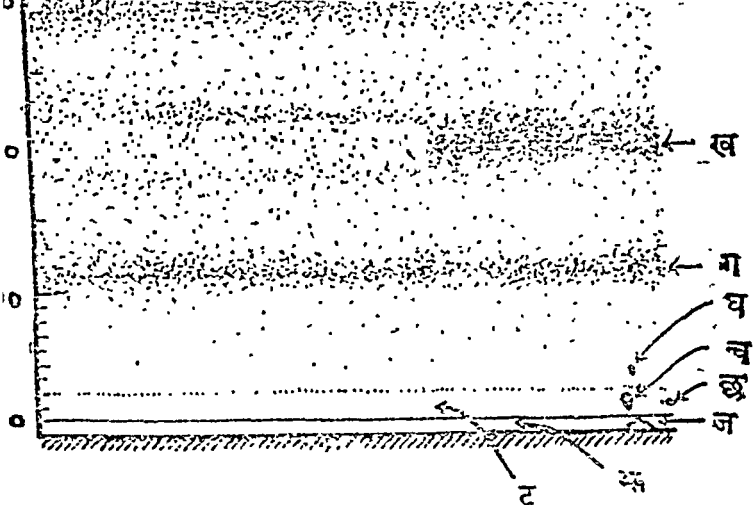
चित्र १

क — फा — स्तर

ख — फ — स्तर

ग — ह — स्तर

घ — अति उच्च गुब्बारा — ३७ कि० मी० (२३ मील)

च — गुब्बारा — २२ कि० मी० (१४ मील)

छ — एयरोप्लेनकी उड़ान — १६ कि० मी० (१० मील)

ज — एवरेस्ट पर्वत — ६ कि० मी० (५.५ मील)

झ — ट्रोपोस्फीयर (अधोमंडल)

ट — स्ट्रेटोस्फीयर (ऊर्ध्वमंडल)

ऊपरी वायु-मंडलकी खोज प्रायः एक सौ पचास वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुई। आरम्भमें अधिकतर गुब्बारेही इस काममें लाये जाते थे। इनमें उद्‌जन (हाइड्रोजन) गैस भरी रहती थी और इनके साथ तापक्रम, दबाव, आर्द्रता इत्यादिके अंकित करनेके लिये एक आत्म-चालित अनुलेखक यंत्र (automatic recording instrument) रहता था। इन्हींकी सहायतासे टीज्यारिन-ड-बोर्ट और (Leon Teisserenc de Bort) और असमनने यह मालूम किया कि जैसे-जैसे हम पृथ्वीकी सतहसे ऊपर जाते हैं तापक्रम ८°श (डिग्री सेण्टीग्रेड) प्रति मीलके हिसाबसे कम होता जाता है, परन्तु लगभग ७½ मीलकी ऊँचाई पर पहुँचनेके बाद तापक्रम स्थिर हो जाता है।

अधोमंडल

वायुमंडलके उस भागको जो पृथ्वीकी सतहसे ७½ मील तक है अधोमंडल (troposphere) कहते हैं। यही भाग आँधी, तूफान, गर्जना, बिजली आदिका स्थान है। इसी भागमें आन्तरिक्ष-विक्षोभ (atmospherics) आदि पैदा होते हैं जो रेडियो ग्राहक (radio receiver) के तीव्रोच्चारक शब्दवर्धक (loud speaker) में भदभदाहटकी आवाज़ पैदा करके दूर प्रदेशसे आने वाले सुरीले गानोंके सुननेमें

विघ्न डालते हैं । इस भागमें जो बिजलीके मेघ होते हैं उनके तीव्र विद्युत्-क्षेत्रके कारण वायुमंडलके यापन (ionisation) में काफी परिवर्तन होता रहता है ।

ऊर्ध्वमंडल

अधोमंडलके ऊपरके भागको ऊर्ध्वमंडल (stratosphere) कहते हैं । जहाँ पर अधोमंडल और ऊर्ध्वमंडल मिलते हैं उसे मध्य-स्तर (trapopause) कहते हैं । ऊर्ध्वमंडल लगभग २० मीलकी ऊँचाई तक माना जाता है । यहाँ पर तापक्रम स्थिर रहता है तथा इसमें ऊपर नीचे वहन-धारायें नहीं चलती हैं । इस भागका रेडियो-तरंगों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है और इसकी खोजके लिये मामूली गुब्बारोंके अतिरिक्त ऐसे गुब्बारे भी भेजे गये हैं जिनमें आदमी गये हैं । इस कामके अग्रणी बेलजियमके सुप्रसिद्ध प्रोफेसर पिकार्ड हैं ।

ओपोणमंडल

हाल ही में ऊर्ध्वमंडलके ऊपर एक नये भागकी खोज हुई है जिसे ओपोण मंडल (ozonesphere) कहते हैं । इसके अन्दर ओपोण है जिसके कारण २९०० आन्स-ट्रामसे लेकर तमाम पराकासनी किरणें (ultraviolet rays) पृथ्वी तक नहीं पहुँचने पाती हैं और इन्हीं किरणों

के शोषणके कारण शायद ओषोणकी उत्पत्ति होती है। यह लगभग २५ मीलकी ऊँचाई तक फैला हुआ है। यद्यपि अब तक यह ठीक-ठीक नहीं मालूम हो पाया है कि यह कैसे बनता है परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसके कारण पृथ्वीकी जलवायु पर काफी प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह सूर्यकी पराकासनी किरणोंका शोषण कर लेता है जिसमें बहुत गरमी होती है।

आयन-मंडल

गुब्बारोंकी सहायतासे वायुमंडलकी खोज २०-२५ मील की ऊँचाईसे ज्यादा दूर तक न की जा सकी। ज्यादा ऊँचाई पर खोजके लिये वैज्ञानिकोंको रेडियो (आकाशवाणी) तरङ्गोंकी शरण लेनी पड़ती है। जब मारकोनी (Marconi) सन् १९०१ ई० में कार्नवालसे न्यूफाउण्डलैण्डको रेडियो के संकेत भेजनेमें सफल हो गये तो इनने तमाम वैज्ञानिकों को बड़े चक्करमें डाल दिया। वे सोचने लगे कि पृथ्वीकी सतहके गोलाकार होने पर भी ये रेडियो तरंगें इतनी दूर कैसे पहुँच सकीं। सन् १९०२ ई० में केनीलो (Kennelly) और हेवीसाईड (Heaviside) ने लगभग साथ ही साथ इस प्रश्नको हल किया। उन्होंने सोचा कि ऊपरी वायुमंडलमें लगभग ६० मीलकी ऊँचाई पर एक ऐसी चालक-तह है जिसमें बहुतसे ऋणाणु हैं और

जिससे यह रेडियो तरंगें वैसे ही परावर्तित (reflect) हो जाती हैं जैसे दर्पणसे मामूली रोशनी। इस केनेली-हैवीसाईड स्तरकी सचाई १९२४ ई० में प्रयोग द्वारा सिद्ध कर दी गई। परन्तु रेडियो-तरंगोंकी सहायतासे अब यह भी सिद्ध कर दिया गया है कि ऊपरी वायुमंडलमें ऋणाणुओंकी ऐसी एक ही स्तर नहीं है बल्कि और भी बहुत सी हैं जिनमें मुख्य दो हैं। एक तो इ-स्तर जो ६० मीलकी ऊँचाई पर है और दूसरी फ-स्तर जो १५५ मीलकी ऊँचाई पर है। इसके अतिरिक्त दिनके किसी विशेष समयमें और भी स्तरें पैदा हो जाती हैं जिनमेंसे ई-स्तर इ-स्तरके ऊपर तथा फा-स्तर फ-स्तरसे ज़रा ऊपर होती है। इन कुल स्तरोंको आयन-मंडल (ionosphere) कहते हैं। इस आयन-मंडलके अतिरिक्त वायुमंडलमें कई और जगहों पर भी ऐसी ही अणुयुक्त स्तरें पैदा हो जाती हैं जिनमें आयन-मंडलके नीचे ड-स्तर तथा स-स्तर मुख्य हैं और आयन-मंडल के ऊपर ज-स्तर तथा ह-स्तर हैं। ड-स्तरकी ऊँचाई लगभग ३०-३५ मील और स-स्तरकी ऊँचाई लगभग १५-२० मील है तथा ज-स्तरकी ऊँचाई लगभग ३५० मील और ह-स्तरकी ऊँचाई लगभग ६०० मील है। आजकल योरोप तथा अमेरिकामें इन स्तरों पर बहुतसी विद्वत्ता-पूर्ण गवेषणायें हो रही हैं। भारतवर्षमें भी इन पर कलकत्ते और इलाहाबाद में काम हो रहा है। इन स्तरोंका ज्ञान रेडियो तरंगोंके गमनके

लिये बहुत कामका है और आशाकी जाती है कि अन्तमें यह अंतरिक्ष-विज्ञानके कामका भी सिद्ध होगा।

ऊपर हम गुब्बारों और रेडियो तरंगोंका उल्लेख वायुमंडलकी खोजके सम्बन्धमें कर चुके हैं। इनके अतिरिक्त कई और भी साधन इस खोजके लिये उपलब्ध हैं। यहाँ हम उनका वर्णन संक्षेपमें करेंगे।

शब्दोद्गम निर्धारण

शब्द-तरंगें भी ऊपरी वायुमंडलकी खोजके काममें लाई गई हैं। महायुद्धके समय ऐसा देखा गया कि जो तोपें बेलजियममें छोड़ी जाती थीं उनकी आवाज़ इंगलिश चैनल और डोवरमें तो सुनाई नहीं देती थी परन्तु यह इंगलैण्डके भीतरी भागोंमें साफ-साफ सुनाई पड़ती थी, इससे वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुँचे कि यह आवाज़ जो बहुत दूर पर सुनाई देती है पृथ्वीकी सतहके बराबर-बराबर चलकर नहीं आती बल्कि यह वायुमंडलकी ऊपरी तहोंसे परावर्तित होकर आता है। ह्विपुल-(Whipple) मतानुसार ऊपरी स्तरोंसे शब्द तरंगोंका परिवर्तन तभी संभव है जब ऊपर वायुके वेगमें वृद्धि हो जाये। यह तभी हो सकता है जब कि या तो ऊपरी स्तरोंमें तापक्रमकी वृद्धि हो या कण परमाणुओंमें विभाजित हो जायें। अभी इन सिद्धान्तोंकी और खोज करनेकी आवश्यकता है।

उल्कायें

हम प्रायः आकाशमें तारे टूटते हुये देखते हैं। यह पत्थरके बड़े-बड़े टुकड़े हैं जो आकाशमें चक्कर लगाते रहते हैं और पृथ्वीके वायुमंडलमें पृथ्वीके गुरुत्वाकर्षण (gravitation) से अधिक वेगवान हो जाते हैं। उस समय इनका वेग लगभग १५ व २० मील प्रति सेकेंड होता है। इनके अधिक वेगके कारण वायुके घर्षणसे यह इतने अधिक गरम हो जाते हैं कि चमकने लगते हैं अतः हम इन्हें देख सकते हैं। इन्हींको उल्का (meteor) कहते हैं। इन उल्काओंके पथ तथा किरण-चित्रसे वायुमंडलके ऊपरी स्तरोंका घनत्व तथा बनावट निकाली जा सकती है। लिंडमन (Lindman) और डाबसन (Dobson) ने उल्काओंके पथोंकी जाँचसे यह मालूम किया है कि ऊपरी स्तरोंका तापक्रम २५°श के लगभग मानना पड़ेगा।

ज्योतियं

यह बात सबको विदित है कि पृथ्वीके ध्रुवोंके निकट छः मास लगातार रात तथा छः मास लगातार दिन होता है। वहां रातमें बिल्कुल अंधकार नहीं रहता बल्कि कभी-कभी पीली या नारंगी रंगकी दीप्यमान ज्योतियाँ दृष्टि-गोचर होती हैं। उत्तरी ध्रुवकी ज्योतियोंको सुमेरु-ज्योति (Aurora Borealis) तथा दक्षिणी ध्रुवकी ज्योतियोंको

ज्योति (Aurora Australis) कहते हैं। अब यह पूर्णतः प्रमाणित कर दिया गया है कि इनकी उत्पत्ति ऋणाणुओंके ऊपरी वायुमंडलके परमाणुओंसे टकरानेसे होती है। इन ज्योतियोंके अधिकतर ध्रुवोंके निकट दिखलाई देनेका कारण यह है कि पृथ्वीके चुम्बकत्व (magnetism) के कारण ऋणाणुधारायें ध्रुवोंकी तरफ ही संग्रह हो जाती हैं। इन ज्योतियोंके किरण-चित्रकी जांचसे मालूम हुआ है कि वायुमंडलके इन स्तरोंमें नोषजन अणु, एकधा यापित नोषजन अणु तथा ओषजनके परमाणु हैं परन्तु वहां पर ओषजनके अणु नहीं हैं।

रातमें आकाशका वर्णपट

उन भागोंमें जो ध्रुवोंसे बहुत दूर हैं ऐसा देखा गया है कि बिल्कुल अंधेरी रातमें भी आकाशमें पूर्ण अंधकार नहीं होता बल्कि उसमें कुछ चमक रहती है। ऐसी रातमें आकाशका किरण-चित्र लेने पर उसमें ओषजनकी प्रसिद्ध हरी रेखा और नोषजन परमाणुओंकी रेखायें मिलती हैं परन्तु यापित नोषजनकी रेखायें नहीं मिलतीं। इससे प्रगट है कि लगभग ६० मीलकी ऊँचाई पर वायुमंडलकी ऊपरी तहें किसी कारणसे जिसका अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चला है दीप्त हो जाती हैं।

विश्व-किरणें

विश्व-किरणें (cosmic rays) भी ऊपरी

वायुमंडलसे घनिष्ट सम्बन्ध रखती हैं। इस शताब्दीके प्रारम्भमें कई वैज्ञानिकोंने मालूम किया कि बहुत सावधानी-के साथ रक्खे हुए पृथगन्यस्त विद्युद्दर्शक (insulated electroscope) में भी कुछ समय बाद आवेश नहीं ठहरता। हैस (Hess) ने सन् १९१२ ई० में बताया कि यह नई किरणोंके कारण होता है जो आकाशकी तरफसे आती हैं। इसकी पुष्टि रेगनर (Regner) तथा अन्य वैज्ञानिकोंने गुब्बारोंके प्रयोगों द्वारा की और उन्होंने यह भी बताया कि १२-१३ मीलकी ऊँचाईपर इन विश्व-किरणोंकी तीव्रता पृथ्वीकी सतह परसे १५० गुनी अधिक है। अभी तक यह नहीं मालूम हो पाया है कि इनकी उत्पत्ति कहाँसे होती है। कुछ वैज्ञानिक इनको तीव्र 'गामा' किरणें बताते हैं तथा कुछ इन्हें बहुत वेगसे चलते हुए ऋणाणु, एकाणु (प्रोटोन) तथा धनाणु (पॉज़ीट्रान) बताते हैं।

ऊपरके वर्णनसे यह साफ विदित है कि वायुमंडलमें बहुत-सी अनोखी बातें हैं और इनकी गहरी खोजकी आवश्यकता है जिससे अन्तरिक्ष-विज्ञानकी ही नहीं बल्कि भौतिक-विज्ञानकी भी काफी वृद्धि हो सकती है।

अध्याय २

निचला वायुमंडल

वायुमंडलके निचले भागकी खोज करनेमें जिन यंत्रोंका अब तक उपयोग हुआ है उनका वर्णन हम इस अध्यायमें कुछ विस्तारसे करेंगे।

पतंग

वायुमंडलकी खोजका श्रीगणेश पतंगकी सहायतासे हुआ। यह आकारमें चौकोर बक्सकी तरह होती है और इसके अन्दर मीटिओरोग्राफ (meteorograph) बड़ी मजबूतीसे बांध दिया जाता है। पतंगकी डोरी तारकी होती है। यह एक चर्खी पर रहती है जो कि मोटरसे चलती है। इस मोटरकी सहायतासे पतंग हर समय नियन्त्रित रक्खी जा सकती है। इस काममें उपयोग किये जाने वाले मीटिओरोग्राफ (meteorograph) हल्के धातुओंके बनाये जाते हैं और बहुधा स्फटम् (एल्युमिनीयम) के होते हैं। इनमें वायुमंडलका तापक्रम, दबाव, आर्द्रता तथा हवाके वेग आदिके निर्दिष्ट चार अनुरेखण कलमोंसे एक घूमते हुए ढोलपर कागजमें छाप दिये जाते हैं। तापक्रमयंत्र कांसा (bronze) और इनवर (invar) की दो जुड़ी हुई पत्तियोंका बना होता है, जो गोलाकार होती है। इसका एक

सिरा स्थिर रहता है तथा दूसरे सिरेका स्थान तापक्रमके परिवर्तनसे बदलता रहता है। दबाव मामूली निर्द्रव बैरोमीटर (aneroid barometer) से, आर्द्रता केश-आर्द्रता-मापकसे, तथा हवाका वेग पवन-वेग-मापकसे विदित होता है। इस काममें तीन तरहकी पतंगोंका प्रयोग किया गया है और उनका चुनाव हवाके वेगपर निर्भर होता है। पतंग अभी तक अधिकसे अधिक ५ मीलकी ऊँचाई तक जा सकें हैं।

गुब्बारे

ज्यादा ऊँचे भागोंकी खोजके लिए गुब्बारे काममें लाये जाते हैं जिनके साथ स्वलेखक यंत्र रहता है। ये गुब्बारे बहुधा शुद्ध गम रबर (gum rubber) के बनाये जाते हैं और आकारमें गोल होते हैं। इनमें हाइड्रोजन गैस भर दी जाती है और मीटिओरोग्राफ (meteorograph) इनके नीचे लटका रहता है। मीटिओरोग्राफ़ के अतिरिक्त एक अवतरण छत्र (parachute) और एक टोकरा भी गुब्बारेसे बंधे रहते हैं। गुब्बारेमें काफी हाइड्रोजन गैस भर देनेपर यह अपने साथ मीटिओरोग्राफ़ आदिको लेकर ऊपर उठता है। जैसे-जैसे गुब्बारा उठता है उसके बाहरका दबाव कम होता जाता है और यह फैलता है अन्तमें काफ़ी ऊँचाईपर अन्दरके दबावके कारण यह फट जाता है। तब मीटिओरो-

प्राफ पृथ्वीकी ओर गिरने लगता है परन्तु अवतरण छत्रके कारण यह पृथ्वी पर बहुत ही धीरेसे उतरता है और उसको कोई हानि नहीं पहुँचती। इस यंत्रके साथ एक पत्र पर लिखा रहता है कि जिस किसी को यह मिले वह उसे वहीं हिफाजतसे रखे और उसकी सूचना तुरन्त ही हवाघरके दफ्तरमें दे दे। ऐसा करने वालेको इनाम मिलता
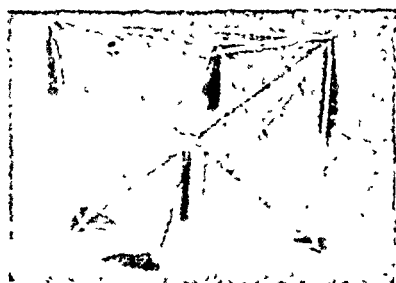
चित्र २

है। गुब्बारोंके साथ कई तरहके मीटिओरोग्राफ काममें लाये जाते हैं। परन्तु ब्रिटेन तथा भारतवर्षमें बहुधा डाईनका मीटिओरोग्राफ (Dine's meteorograph) काममें लाया जाता है। इसमें तापक्रम दबाव और आर्द्रताके अनुलेखक यंत्र होते हैं। इसे एक एलुमिनियमके डिब्बे में बन्द करके, बांसकी

खपच्चियोंके बने एक ढांचेके बीचमें लटका दिया जाता है। चित्र न० २ में यह ढांचा मीटिओरोग्राफ सहित दिखलाया गया है। यह ढांचा गुब्बारेके नीचे लगभग ४० गजकी रस्सीसे बँधा रहता है। गुब्बारे तथा इस ढांचेके बीचकी यह ४० गजकी दूरी जो कोण एक थियोडोलाइट नामी यंत्रपर बनाती है उसे थोड़े-थोड़े समय बाद नापा जाता है और इस तरहसे इकट्ठे किये हुये निर्दिष्टसे हवाकी दिशा तथा वेग मालूम किया जाता है। यह मीटिओरोग्राफ सहित बहुत हलका होता है और इसकी तौल सिर्फ २ औंसके लगभग रहती है।

गुब्बारोंकी सहायतासे वायुमंडलकी खोज बहुत ही सुगमतासे होती है और इसीलिये ये अब तक भी बहुत जगह काममें लाये जाते हैं। इनमें सबसे अच्छी बात तो यह है कि इनसे हमें तापक्रम, दबाव, आर्द्रता आदिके अविरत लेख काफी ऊँचाई तक मिल सकते हैं। परन्तु इनमें कुछ दोष भी हैं। सबसे बड़ा दोष यह है कि गुब्बारोंके साथ ऊपर गये हुए मीटिओरोग्राफको पानेमें तथा उनकी जांच करनेमें काफी समय लग जाता है। यह मीटिओरोग्राफ कभी तो सप्ताहों बाद मिलते हैं और कभी बिल्कुल मिलते ही नहीं। इन्हीं कारणोंसे यह गुब्बारे ऐसे समय काममें नहीं लाये जा सकते जब कि ऊपरी वायुमंडलके विषयमें तुरन्त जाननेकी आवश्यकता हो। इसीलिये

दैनिक मौसमकी भविष्यवाणी करनेके लिये यह बिलकुल काममें नहीं लिये जा सकते । वैज्ञानिक अनुसन्धानमें गुब्बारों द्वारा प्रयोगके नतीजेको जाननेकी बहुत शीघ्रता नहीं होती तथापि इनका उपयोग बहुत सीमित है क्योंकि इन्हें समुद्रके ऊपर तथा वीरान जगहों पर काममें लाना संभव नहीं । जैसा कि हम पहले लिख आये हैं इन्हीं गुब्बारोंकी सहायतासे टीज़रिन डु बोर्ट ने ऊर्ध्व-मंडलकी खोजकी थी ।

सूचक गुब्बारे

ऊपरी वायुमंडलकी खोज तथा विशेषतः मौसमकी भविष्यवाणी करनेके लिये हवाकी दिशा तथा वेगको नित्य जाननेकी अत्यन्त आवश्यकता है और इस कामके लिये बयान किये हुए गुब्बारोंके अतिरिक्त सूचक-गुब्बारे (Pilot Balloons) भी काममें लाये जाते हैं। इनमें व्यय भी कम होता है क्योंकि और दूसरी बातों (तापक्रम आदि) को जाननेके लिये इनमें कोई यंत्र नहीं लगाये जाते । इन गुब्बारोंके नीचे एक रस्सीसे दो लाल झंडियाँ एक दूसरेसे कुछ नियत दूरी पर लगादी जाती हैं और जो कोण यह दोनों झंडियां बनाती हैं थियोडोलाइट नामी यंत्रसे नाप कर हवाका वेग तथा दिशाका ज्ञान हो जाता है । परन्तु जब कुहरा हो या किसी दूसरे कारणसे यह गुब्बारे दृष्टि-गोचर न होते हों उस समय हम ऊपरी हवाके विषयमें

इनसे कुछ जान नहीं सकते। रातके समय इनसे हवाके विषयमें जाननेके लिये इनके नीचे झंडियोंके स्थान पर कागज़की लालटेनें लटका दी जाती हैं जिनमें मोमबत्ती जलती रहती है। कुहरे तथा बादलोंके कारण रातको भी वही परेशानी होती है जो दिनको। फिर इनसे यह भी डर लगा रहता है कि कहीं यह ज्वलन-शील वस्तुओं पर गिर कर आग न लगा दें। परन्तु आजकल मोमबत्तीके स्थानपर बैटरी काममें लाने लगे हैं अतः अब यह डर बहुत कम हो गया है।

शब्दोद्गम निर्धारण

महायुद्धके समय ऊपरी हवाओंकी दिशा तथा वेगके जाननेकी हर तरहके मौसिममें आवश्यकता पड़ती थी अतएव शब्दोद्गम निर्धारणके सिद्धान्तके आधारपर वायुकी दिशा आदि जाननेकी बहुत-सी विधियाँ निकाली गईं। इनमेंसे एक यह है। गुब्बारोंमें एक ऐसा यन्त्र लगा दिया जाता है जो नियत समयके बाद फटता है। फटनेकी आवाज़ दो समकोणिक रेखाओं पर स्थित कई स्थानों पर सुनी जाती है। सब स्थानोंकी आवाज़ किसी एक बीचके स्थान पर भेज दी जाती है और इनसे यह मालूम कर लिया जाता है कि गुब्बारा कितनी ऊँचाई पर फटा। वास्तवमें गुब्बारेमें गैस भर कर इस बातका अनुमान कर लिया जाता है और जिधरसे हवा चल रही हो उधर इतनी दूर ले जाकर छोड़ा

जाता है कि जब बम्ब फटे तो गुब्बारा जाँच करने वाले स्थानोंके ठीक ऊपर हो। इस तरह हवाकी दिशा तथा वेग-का कुछ अनुमान लगाने पर फिर एक दूसरा गुब्बारा ऐसे स्थानसे छोड़ा जाता है कि इसके साथका बम्ब पहले वाले स्तरसे कुछ ऊपर जाकर जाँच करने वाले स्थानोंके ठीक ऊपर फटे। इस तरह कई गुब्बारे भेजे जाते हैं जो भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों तक पहुँचते हैं। वास्तवमें यह विधि कठिन है तथा इसमें व्यय भी अधिक होता है और इसमें सबसे बड़ा दोष तो यह है कि इस तरहसे काफी ऊँचाई तक हवाका वेग तथा दिशा मालूम करनेमें कई घंटे लग जाते हैं और इस समयमें ही इनमें काफी परिवर्तन हो जाता है। अतः न यह विधि यथार्थ है और न जल्दी हो सकती है। दूसरा बड़ा भारी दोष जो इस पर लगाया जाता है वह यह है कि यदि गुब्बारा ठीक काम न करे तो बम्बको ऐसी जगह ले जाकर फट सकता है जिसके कारण बहुत ज्यादा हानि हो सकती है तथा कई जानें जा सकती हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तके ही आधार पर वायुका वेग तथा दिशा जाननेकी दूसरी विधि यह है। तोपसे एक गोला सीधे ऊपरको छोड़ा जाता है और पृथ्वी पर जिस जगह यह आकर गिरता है उस जगह और तोपके बीचकी दूरीसे वायु-की दिशा तथा वेगका अनुमान लगा लिया जाता है। इस विधिके कई गोले इस तरह छोड़े जाते हैं कि हर एक पहले

वाले गोलेसे कुछ अधिक ऊँचाई तक जा सके। इस तरह काफी ऊँचाई तक जाँचकी जा सकती है। परन्तु यह विधि भी पहली विधिके दोषोंसे सर्वथा उन्मुक्त नहीं है।

वायुयान

गत महायुद्धके बादसे वायुयान भी वायुमंडलकी खोजके काममें लाये जाने लगे हैं और ८ या ९ मीलकी ऊँचाई तककी जांचके लिये तो इन्होंने दूसरी विधियोंको मात कर दिया है। काफी समयसे वायुयान बनाने वालों तथा इनके साहसी उड़ाकोंका यह भी एक उद्देश्य रहा है कि जितना ऊँचा हो सके इनमें बैठ कर ऊपर जावें। सन् १९३० ई० में अमीरकाके एक मशहूर उड़ाके लैफ्टीनैण्ट ऐ० सौसेक (Lieut. A. Soucek) अपने वायुयानको सबसे ऊपर ४३१६७ फुट तक ले गये। इनके दो साल बाद फ्रांसके एक उड़ाके गुस्टेव लैमोनी (Gustave Lemoine) इस ऊँचाईसे भी एक हज़ार छः सौ फुट ऊपर उड़े। कुछ समय बाद एक वायुयानसे कूदते समय अवतरण-छत्रके न खुलनेके कारण इनकी मृत्यु हो गई। सन् १९३४ ई० इटलीके एक कमाण्डर रेनैटो डोनेटी (Commander Renato Donati) अपने वायुयानसे ४७३४९ फुट (८.९ मील) ऊपर चढ़ गये। अगस्त सन् १९३६ ई० में फ्रांसके एक उड़ाके जार्ज डैट्री

(George Detre) एक फौज़ी वायुयानमें, जिसमें विशेष तरहके यंत्र लगे हुए थे, बैठ कर ४८७४६ फुट तक उड़े और इटलीके वायुयानमें सबसे ऊँचे उड़नेका रिकार्ड जीत लिया। परन्तु इसके छः सप्ताह बाद ही रॉयल ऐयर फोर्सके स्क्वेड्रान-लीडर-एफ-आर-डी-स्वेन (Squa-dron Leader F. R.D. Swain) एक विशेष रूपसे बनाये हुए एक-पंखी वायुयानसे ४९९६७ फुट (९·४६ मील) तक चढ़ गये। यह वायुयान ब्रीस्टॉल-वायुयान-कंपनीका बनाया हुआ था। इंजनको छोड़कर इसके लगभग सब भाग लकड़ीके बने हुए थे। यह ६६ फुट चौड़ा तथा ४४ फुट लम्बा था और इन्होंने एक विशेष रूपसे बने हुए कपड़े पहने थे जिसमें हवा बिल्कुल अन्दर या बाहर नहीं जा सकती थी। इन कपड़ोंके साथ एक ओक्सजन देने वाला गैस यंत्र लगा था जिसकी सहायतासे इन्हें पहनने वाला पांच हज़ार फुटकी ऊँचाई पर लगभग दो घंटे तक रह सकता था। सन् १९३७ ई० में इटलीके करनल एम० पेज़ी (Colonel. M. Pezzi) स्क्वेड्रान-लीडर स्वेनसे भी ऊँचे ५१३६१ फुट तक उड़े परन्तु कुछ समय बाद ही ब्रिटेनके फ्लाइट-लैफ्टीनैण्ट एम० जे० ऐडम (Flight-Lieut. M. J. Adam) ने उसी वायुयानसे जिसमें स्वेन-उड़े थे ५३९३७ फुट (१०$\frac{1}{2}$ मील) ऊपर तक उड़ कर इसे भी मात कर दिया। चित्र ३

चित्र २

फ्लाइट लैफ्टीनैण्ट ऐडम अपनी उडने वाली पोशाकमें

में फ्लाइट-लैफ्टीनैण्ट ऐडम अपनी उस पोशाकमें दिखाये गये हैं जिसे पहन कर यह सबसे ऊँचे उड़े थे और अभी तक इन्हींका सबसे ऊपर उड़नेका रिकार्ड है।

आजकल नित्य प्रति वायुयान ऊपर भेजे जाते हैं और जितने ऊँचे वे उड़ सकते हैं उड़कर मौसमके विषयमें निर्दिष्ट संग्रह करते हैं। लंदनके हवा घरमें हर सुबह डक्सफोर्ड (Duxford) के उड़ान स्टेशनसे जो कैम्ब्रिजशायर (Cambridgeshire) में है, वायुमंडलकी खबरें पहुंचती हैं। इस उड़ान-स्टेशनसे हर रोज़ बिला नागा एक वायुयान ऊपर उठता है और कम से-कम २०००० फुट और आजकल तो यह ४०००० फुट भी चढ़ जाता है। इसका उड़ाका बिजलीकी सहायतासे अपने चारों ओर गरमी पैदा करता रहता है और सांस लेनेके लिये ओषजन काममें लाता है। यह अपने साथ तापक्रम तथा आर्द्रता आदि नापनेके यन्त्र ले जाता है। चूंकि यह बादलोंको सिर्फ देखकर मौसमका हाल समझनेमें दक्ष होता है अतः इनका निरीक्षण करता है और यह देखता रहता है कि यह बादल किधर जा रहे हैं तथा क्या कर रहे हैं। इस तरहकी दक्ष आंखोंसे की हुई जांच बहुत ही कामकी होती है और कोई भी यंत्र इसको नहीं पा सकता। एक उड़ानमें लगभग ६० मिनट लगते हैं। जैसे ही यह नीचे उतरता है उसकी डायरी तुरन्त लंदनके दफ्तरमें पहुँचाई जाती है। इस तरह-

की उड़ान फिर एक बार दोपहरको की जाती है। वायुयानों-की इन उड़ानोंमें बहुत ही व्यय होता है अतः अंतरिक्ष-विज्ञानवेत्ताओंको कम उड़ानों पर ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है। इसके सिवाय बहुत ही खराब मौसममें जब कि कभी-कभी जान जानेका भय रहता है वायुयान ऊपर नहीं भेजे जा सकते। खराब मौसममें वायुयान बहुधा डाँवा-डोल हो जाते हैं और ठीक समय पर ऊपरकी खबरें वापिस लानेमें असमर्थ होते हैं परन्तु वास्तवमें ऐसे ही खराब मौसममें हमें ऊपरी वायुमंडलका ज्ञान अधिक आवश्यक है।

रेडियो मीटिओरोग्राफ

ऊपर दिये हुए वर्णनसे यह स्पष्ट है कि ऊपरी वायु-मंडलकी खोज करनेके लिये एक ऐसी विधिको अत्यन्त आवश्य-कता अनुभव हो रही थी जो कि इसका हाल बहुत कम समयमें बिल्कुल ठीक किसी भी मौसममें बतादे। अन्तरिक्ष विज्ञानवेत्ताओंने सोचा कि यदि ऐसा संभव हो कि हम गुब्बारोंके साथ एक रेडियो-प्रेषक भेजें जो ऊपरी वायुमंडल-की तमाम बातें लगातार भेजता रहे तो हम इन्हें पृथ्वीपर सुनकर जैसे-जैसे गुब्बारा ऊपर उठता जावे प्रत्येक स्तरके विषयमें जान सकते हैं। इस विचारके आधारपर ही आज-कलके रेडियो-मीटिओरोग्राफ बनाये जाते हैं। यह विषय बिल्कुल ही नया है और इसका विकास महायुद्धके बाद ही हुआ है। सर्वप्रथम वायुमंडलके निर्दिष्टको रेडियो-

प्रेपकसे भेजनेका प्रयत्न फ्रांसमें सन् १९१८ ई० में हुआ परन्तु इसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। जर्मनीमें सन् १९२३ ई० में किए गए प्रयोगोंको भी ऐसी ही असफलता मिली। सन् १९२७ ई० में इड्रूक और क्यूरो गुब्बारेके साथ एक ४० मीटर लहर-लंबाई वाला रेडियो प्रेपक लगानेमें सफल हुए। वास्तवमें रूसके वैज्ञानिक माल्ट्कनाफ (Maltchanoff) सबसे पहले जनवरी सन् १९३० ई० में रेडियो-प्रेपकको सहायतासे ऊर्ध्व मंडल तक खोज करनेमें सफल हुए और तभीसे इस विषयमें अत्यन्त शीघ्रतासे विकास हो रहा है। यह सफलता रूसके प्रसिद्ध वैज्ञानिक माल्ट्कनाफ, फिनलैण्डके वेसेला, फ्रांसके क्यूरो और जर्मनीके ड्यूकर्कके घोर परिश्रमका फल है। इस तरहकी खोजोंके लिये जिस उपकरणकी आवश्यकता है उसे हम चार भागोंमें बांट सकते हैं। (१) गुब्बारा (२) मीटिओरोग्राफ (३) प्रेपक और (४) ग्राहक।

गुब्बारा—हम यह चाहते हैं कि ऊपरी वायुमंडलके विषयमें अनुसंधान करने वाले यन्त्र बिल्कुल सीधे ऊपर उठें। यह हमारे गुब्बारे पर ही निर्भर हैं। इनके लिये गुब्बारे-की ऊपर उठानेकी शक्ति सब उपकरणोंके उठानेके लिये जिस शक्तिकी आवश्यकता है उससे कहीं अधिक होनी चाहिये और तभी यह सीधा ऊपर अत्यन्त शीघ्रतासे उड़ सकता है। शीघ्र न उठ सकने वाले गुब्बारे वायुके कारण

तिरछी दिशामें उठेंगे। फलस्वरूप एक ही ऊँचाई पर पहुँचने पर ग्राहकसे इनकी दूरी शीघ्र उठने वाले गुब्बारोंसे बहुत अधिक होगी। इस कारण शीघ्र उठने वाले गुब्बारोंके रेडियो संकेत तिरछे उठने वाले गुब्बारोंके संकेतोंसे अधिक प्रबल होते हैं। परन्तु अत्यन्त शीघ्र ऊपर उठने वाले गुब्बारेमें यह दोष है कि हम वायुमंडलके किसी विशेष स्तरका निर्दिष्ट उतने परिमाणमें संग्रह नहीं कर सकेंगे जितना कि गुब्बारेके धीरे-धीरे ऊपर उठनेसे कर सकते हैं। गुब्बारोंके बनानेमें इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि इसके ऊपर उठते समय हवाका कमसे कम प्रतिरोध हो। वास्तवमें एक बड़े गुब्बारेकी जगह आजकल बहुतसे छोटे-छोटे गुब्बारे काममें लाये जाते हैं। इससे व्यय भी बहुत कम होता है। हवाका प्रतिरोध गुब्बारेको एकके ऊपर एक बांधनेसे और भी कम हो जाता है। गुब्बारेके साथ एक अवतरण-छत्र भी रहता है ताकि सब उपकरण बड़ी आसानीसे नीचे उतर आवें और किसीको हानि न पहुँचे।

मीटिओरोग्राफ—रेडियो-मीटिओरोग्राफके सिद्धान्त को समझनेके लिये इसको एक रेखा चित्र (चित्र ४) में दिखाया गया है। इसमें 'ग' एक स्पर्श करने वाली छड़ है जो बीचमें एक घटी-यंत्रकी सहायतासे नियत कोणीय वेगसे घूमती है। जैसी आवश्यकता हो आधे या एक मिनटमें यह एक पूरा चक्कर लगाती है। ब्ल्यूहिलकी
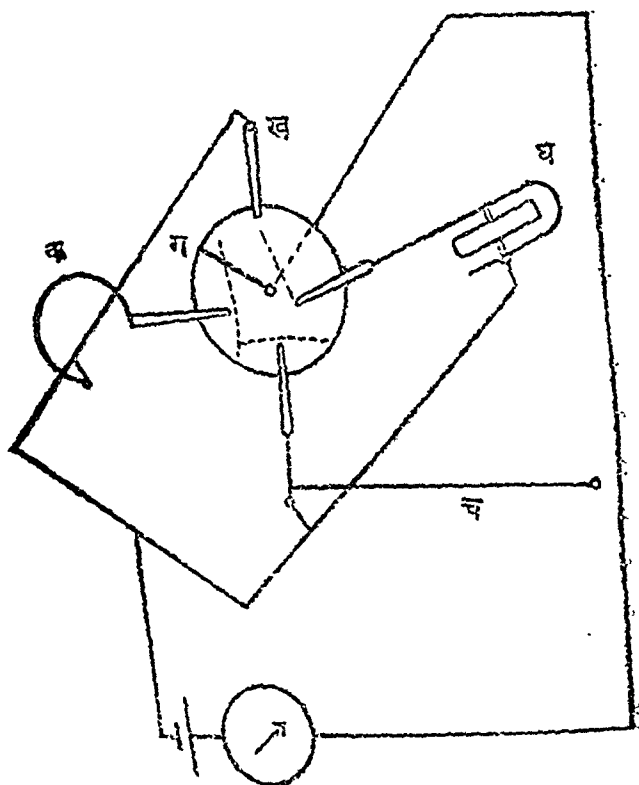
चित्र ४—
रेडियो मीटिओरोग्राफ़का रेखाचित्र।

क—द्विधात्विक (Bimetal)

ख—रेफरेन्स (आदर्श छड़)

ग—स्पर्श करने वाली छड़

घ—एनीरायड

वेधशालाके रेडियो मीटिओरोग्राफोंमें यह छड़ पीतलकी बनाई जाती है और यह एक बेकेलाइटके मंडलमें जड़ी रहती है। इस छड़के साथ एक छोटी कमानी जड़ी हुई होती है जो कि चक्कर लगाते समय उन छड़ोंसे वैद्युत-स्पर्श करती है जो धात्विक तापमापक (क), आर्द्रतामापक तथा निर्द्रव बैरोमीटर (घ) के साथ लगी रहती हैं। घूमने वाली छड़ हर एक चक्करमें एक ऐसी छड़से (ख) भी स्पर्श करती है जिसकी अपेक्षासे नापें ली जाती हैं, और इनकी सहायतासे हम समयका ठीक पता लगा सकते हैं। इन सब स्पर्शोंके समय एक विद्युत्-कुंडली टूट जाती है अतः प्रेषकसे प्रेषण बन्द हो जाता है। स्पर्श टूटने पर विद्युत् कुंडली फिर जुड़ जाती है और प्रेषण होने लगता है। इस तरहसे जब स्पर्श होता है तब हमें पृथ्वी पर ग्राहकमें मालूम हो जाता है। और भिन्न-भिन्न छड़ोंके स्पर्शके समयान्तरसे हम वायुमंडलके विषयमें सब बातें मालूम कर लेते हैं। घड़ी-यंत्रमें इनवर (Inver) का एक दोलन-चक्र रहता है अतः इस पर तापक्रमका कोई प्रभाव नहीं पड़ता और घूमने वाली छड़की कोणीय गति एक सी बनी रहनी चाहिये। पर वास्तवमें प्रयोगके समय यह गति एकसी नहीं रहने पाती और इससे काफ़ी कष्टदायक समस्या खड़ी हो जाती है। आजकल घटीयंत्रोंको पंखेसे चलने वाले यंत्रोंसे बदलनेके प्रयोग किये जा रहे हैं।

प्रेषक

प्रेषकके विषय में सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि इसका प्रेषण किस लहर-लंबाई पर किया जावे। यह लहर-लंबाई ऐसी चुननी चाहिये कि रेडियो शक्ति बड़ी आसानीसे पैदा की जा सके और साथ ही साथ सामर्थ्य कम खर्च हो, काफ़ी तेज़ संकेत भेजे जा सकें, सब उपकरणोंका बोझ भी अधिक न हो जाय और व्यक्तिकरण (interference) भी सबसे कम हो। पहले २० से १५० मीटर लहर-लंबाई वाली रेडियो-किरणें काममें लाई जाती थीं। उसका मुख्य कारण यह था कि ये बड़ी आसानीसे पैदा की जा सकती हैं परन्तु जब उपकरणके बोझकी ओर ध्यान दिया जाता है तब यह साफ़ विदित हो जाता है कि अति-सूक्ष्म किरणें (ultra short waves) सबसे अच्छी होंगी। इनके साथ अन्तरिक्ष विक्षोभ (atmospherics) से व्यतिकरण भी इतना अधिक कष्टप्रद नहीं होता जितना कि ऊपर बताई हुई बड़ी लहर-लंबाई वाली रेडियो किरणोंके साथ होता है और उष्ण कटिबन्धमें और विशेषतः गर्मीमें तो बड़ी वाली किरणोंकी लहर-लंबाई के साथ यह इतना बढ़ जाता है कि वहाँ पर काम करना प्रायः असम्भव है। इसके अतिरिक्त अतिसूक्ष्म किरणोंमें कम शक्ति होते हुए भी यह काफ़ी दूर तक भेजी जा सकती

हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि अति-सूक्ष्म किरणें ही इस कामके लिये सबसे उत्तम हैं।

प्रेषकके साथ विशेषतः सोचनेकी बात यह है कि इनमें कौन से रेडियो-वाल्व काममें लाये जावें। ये इस तरहके होने चाहिये कि इनके तन्तु (filament) में बहुत कम सामर्थ्य खर्च हो, ये एक या दो मीटर लहर-लंबाई वाली किरणें पैदा कर सकें और साथ ही साथ काफी हलके भी हों। अति-सूक्ष्म किरणोंके काममें लानेके कारण कुंडलीको सब चीजोंके आकार काफी कम हो जाते हैं अतः सब उपकरणकी तौलभी घट जाती हैं। इन रेडियो वाल्वोंके ऐनोडमें गुंजक परिमाणक (buzzer transformer) से सामर्थ्य दी जाती हैं। परन्तु इसके साथ सबसे बड़ा दोष यह है कि कभी-कभी गुंजक काम करता-करता अटक जाता है। इसके साथ जो बैटरियाँ काममें लाई जाती हैं वे बहुत हलकी होनी चाहिये। परन्तु बैटरियोंकी तौल हम उनकी समाई (capacity) कम किये विना नहीं घटा सकते और वे ऐसी तो होनी ही चाहिये कि कम से कम तीन या चार घंटों तक सामर्थ्य दे सकें। जैसे-जैसे हम ऊपर जाते है ठंढकके बढ़नेके कारण बैटरियाँ ठीक तरहसे काम नहीं करतीं और इसलिये कुछ वैज्ञानिकोंने इनके साथ ताप-पृथक्न्यासक (thermal insulator) तथा ताप उत्पन्न करने

वाले पदार्थोंके काममें लानेकी सम्मति दी है। प्रेषकको आर्द्रतासे बचानेके लिये तथा तापमापकको सूर्यकी सोधी किरणोंसे बचानेके लिये इन्हें एक बक्सेमें बन्द रखते हैं।

ग्राहक—जो प्रेषक ऊपरो वायुमंडलकी खोजके काममें लाये जाते हैं उनमें दोलन करने वाली कुंडलियाँ मामूली तरहकी होती हैं अतः यह बहुत स्थिर नहीं रहतीं इसलिये इनके संकेतोंको सुपरहैट (superhet) ग्राहकोंसे सुननेमें काफ़ी कठिनता होती है। इनके लिये ऐसे ग्राहकों की आवश्यकता है जिनका सुर मिलाना (tuning) काफ़ी चौड़ा हो अत: अति-सूक्ष्म तरंगोंको सुननेके लिये सुपर-रीजैनरेटिव (super-regenerative) ग्राहक काममें लाये जाते हैं। परन्तु ऐसे ग्राहकोंके काममें लानेमें कई असुविधायें होती हैं। इनमें कोलाहल बहुत होता है अतः इनमें सुननेके लिये जो संकेत भेजा जाये वह काफ़ी प्रबल होना चाहिये। इसके अतिरिक्त ये इतने अधिक सुग्राहक नहीं होते और जब कभी दो या दोसे अधिक ऐसे ग्राहक पास-पास काममें लाये जाते हैं तो ये एक दूसरेके साथ बहुत बुरी तरहसे व्यतिकरण करते हैं जिससे दिशा-निर्धारणमें बहुत कठिनाई होती है। आजकल इन रेडियो प्रेषकोंके साथ काममें लाये जानेके लिये सुपरहैट्रोडाईन (superhetrodyne) ग्राहकोंका विकास किया जा रहा है। जो संकेत प्रेषकसे भेजे जाते हैं उनका ग्राहक-

की सहायतासे एक काललेखक यंत्र पर अनुलेख होता है जो मीटिओरोग्राफकी घूमने वाली छड़के तुल्यकालिक होता है।

रेडियो मीटिओरोग्राफके प्रकार

आजकल जो रेडियो मीटिओरोग्राफ बनाये जाते हैं वे दो तरहके होते हैं। एक तो वे जिनकी झूलनसंख्या (frequency) एक ही रहती है तथा दूसरे वे जिनकी झूलनसंख्या बदलती रहती है। दोनोंमें कुछ गुण व दोष हैं। पहले प्रकारके रेडियो मीटिओरोग्राफ एक ही झूलनसंख्या पर ऊपरी वायुमंडलके विषयमें सब बातें जल्दी-जल्दी, एकके बाद दूसरी, भेजता है। अतः हम इससे ऊपरी वायु-मंडलके तापक्रम आदि किसी भी बातके विषयमें अविरत लेख नहीं ले सकते। दूसरे प्रकारके रेडियो मीटिओरोग्रा-फोंमें तापक्रम, दबाव आदिमें जो परिवर्तन होता है वह प्रेपककी झूलनसंख्याके परिवर्तनसे विदित होता है। इससे अविरत लेख लिया जा सकता है परन्तु यह लेख एक ही चीज़का हो सकता है और दूसरी बातोंको मालूम करनेमें या तो बदलती झूलनसंख्याके अतिरिक्त दूसरे संकेत भेजे जाते हैं या प्रेपक बारी-बारीसे हर एक बातके लिये थोड़ी-थोड़ी देर तक काम करता है। परन्तु इससे फिर हमारा लेख अविरत होगा और यह भी पहली प्रकारके मीटिओरो-ग्राफोंकी तरह काम करने लगेगा।

स्थिर झूलनसंख्या वाले रेडियो मीटिओरोग्राफोंकी झूलनसंख्यायें बहुत कम बदलती हैं अतः इनके और दूसरे स्टेशनोंके संकेतोंसे व्यतिकरण करनेकी बहुत कम संभावना है परन्तु बदलने वाली झूलनसंख्या वाले रेडियो मीटि-ओरोग्राफोंकी झूलनसंख्यायें कभी-कभी १००० किलो साई-किल तक बदल जाती हैं अतः यह दूसरे रेडियो-प्रेपकोंसे बहुत व्यतिकरण करता है।

बदलने वाली झूलनसंख्या वाले रेडियो-मीटिओरो-ग्राफमें दूसरा दोष यह है कि इनके यंत्रोंका अंशमापन (calibration) तभी हो सकता है जब कि इसके साथ प्रेपक भी हो। अतः ऐसा करनेके लिये एक रेडियो ग्राहकको आवश्यकता पड़ती है और इसकी बहुत संभाल रखनी पड़ती है कि अंशमापन करनेके समयसे इसे ऊपर भेजनेके समयके बीचमें इसमें कोई परिवर्तन न हो जावे। इसके विपरीत स्थिर झूलनसंख्या वाले रेडियो मीटिओरो-ग्राफमें तापक्रम, दबाव, आर्द्रता आदिका अंशमापन करते समय इसके साथ प्रेपककी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती और कई मीटिओरोग्राफोंका अंशमापन एक साथ ही किया जा सकता है। तथा एक मीटियोरोग्राफका अंशमापन करनेके बाद यह चाहे जिस प्रेपकके साथ ऊपर भेजा जा सकता है। इस तरहके मीटिओरोग्राफका संकेत बड़ी सुगमतासे काल-लेखक यन्त्र पर अनुलेख किया जा सकता है परन्तु

दूसरे प्रकारके मीटिओरोग्राफके संकेतोंको एक दर्शकको देखना पड़ता है जो इतना आसान काम नहीं है।

अस्कानिया रेडियो मीटिओरोग्राफ जिसे माल्ट्कनाफ और विकमैन 'ग्राफ जैपलिन' वायुमंडलके आर्कटिककी खोजके काममें लाये थे, माल्ट्कनाफका कैमगैरिट (Kammgerit) रेडियो मीटिओरोग्राफ और ब्यूरो का रेडियो मीटिओरोग्राफ, सब एक आवृत्ति वाले रेडियो मीटिओरोग्राफके सिद्धान्त पर बने हुए हैं। सिर्फ इनमें तापक्रम, दबाव आदि नापने वाले यन्त्रोंसे स्पर्श करनेकी विधियाँ भिन्न-भिन्न हैं। इसके विपरीत ड्यूकर्ट और व्यसेलाके रेडियो मीटिओरोग्राफ बदलने वाली झूलनसंख्या वाले रेडियो मीटिओरोग्राफोंके सिद्धांत पर बने हैं। व्यसेलाके रेडियो मीटिओरोग्राफमें घड़ी यंत्रके स्थान पर प्याले वाले पवन-वेग-मापककी तरह पंखोंसे घूमने वाला यंत्र लगा रहता है। चित्र ५ के एक भागमें गुब्बारेके साथ रेडियो मीटिओरोग्राफ ऊपर जाता हुआ तथा दूसरे भागमें अवतरण छत्रके साथ नीचे उतरता हुआ दिखलाया गया है।

मनुष्य सहित गुब्बारोंका उद्देश्य

अतः हम रेडियो मीटिओरोग्राफोंकी सहायतासे वायुमंडलका तापक्रम, दबाव, आर्द्रता आदिके विषयमें सभी मौसम बड़ी सुगमतासे जान सकते हैं। परन्तु इनके अतिरिक्त
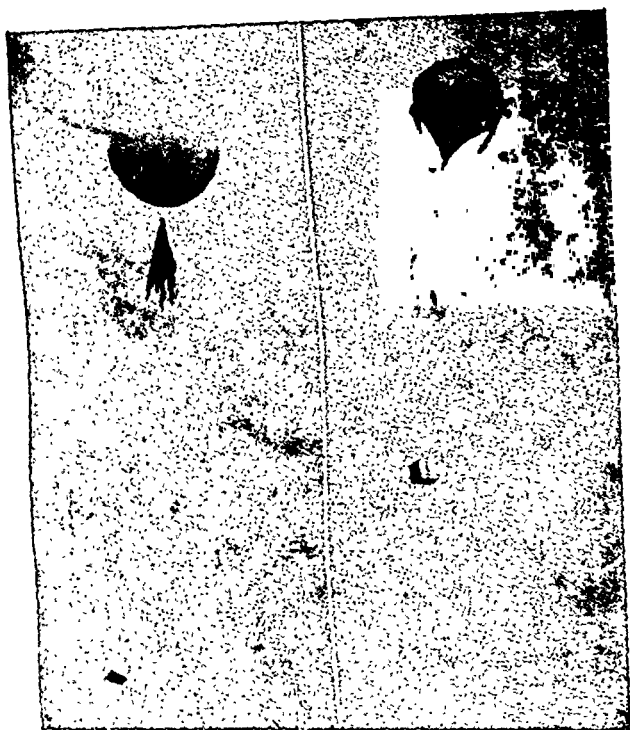
चित्र ५

रेडियो मीटियरोग्राफ़ गुब्बारेके साथ ऊपर जाता हुआ और अवतरण छत्रके साथ नीचे आता हुआ ।

दूसरी भी बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनको जाननेके लिये वैज्ञानिक बहुत इच्छुक हैं। इनमेंसे मुख्य हैं विश्वकिरणें ये भी रेडियो मीटिओरोग्राफोंकी सहायतासे मालूमकी जा सकती हैं। विश्वकिरणोंसे जो यापन होता है उससे जो अतिसूक्ष्म वैद्युत् धारा बहेगी उसकी सहायतासे रेडियो-प्रेषकसे संकेत भेजे जा सकते हैं, और पृथ्वी पर रेडियो-ग्राहककी सहायतासे उन्हें अनुलेख किया जा सकता है। परन्तु ऐसे लेखोंसे वैज्ञानिक संतुष्ट नहीं हैं। वास्तवमें विश्व-किरणोंके तत्त्वपूर्ण अनुसंधानके लिये वे चाहते हैं कि गुब्बारा एक ही स्तर पर कई घण्टों तक रहे। यह ऐसे गुब्बारोंके अतिरिक्त जिसमें आदमी बैठ कर जावें और किसीसे संभव नहीं है, यद्यपि और तरहके गुब्बारे काफी ऊँचाई तक, कम व्ययके, तथा मनुष्यको जान जोखिममें डाले बिना ही काममें लाये जा सकते हैं। ऊपरी वायुमंडलमें विश्वकिरणों के अनुसन्धानकी महत्ताको अनुभव करके ही प्रोफसर पिकार्ड अपनी जानको जोखिममें डालकर सन् १६३१ ई० में ऊर्ध्व मंडलमें अपनी पहली उड़ान उड़े जिसने वैज्ञानिक अनुसन्धानमें एक नया युग आरम्भ कर दिया। यद्यपि इस पहली उड़ानका उद्देश्य विशेषतः विश्वकिरणोंकी खोज करना था परन्तु इसके बाद ऊर्ध्व-मंडलमें जो-जो उड़ानें हुईं उनमें इसके अतिरिक्त और कई बातोंकी खोज करनेका भी उद्देश्य रहा। आजकलकी ऊर्ध्व-मंडलकी ऐसी खोजमें

जिन जिन बातोंका विचार रक्खा जाता है वे निम्न लिखित हैं।

१—गुब्बारेके पृथ्वीको छोड़नेके समयसे इसकी सबसे ऊँची सतह पर पहुँचने तक तापक्रम और दबावके परिवर्तनोंका अनुलेख करना।

२—भिन्न-भिन्न स्तरों पर वायुकी दिशा तथा वेगको मालूम करना क्योंकि बहुत समयसे कुछ लोगोंका विश्वास है कि ऊर्ध्व-मंडलमें हमेशा पूरबी हवा चलती रहती है।

३— हवाकी विद्युत्-चालकताके परिवर्तनोंको मालूम करना। समुद्रकी सतह पर हवाकी विद्युत्चालकता बहुत कम है परन्तु जैसे-जैसे हम ऊपर बढ़ते जाते हैं हवाकी गैसोंका यापन होता जाता है अर्थात् इनके परमाणुओंसे कुछ ऋणाणु अलग होते जाते हैं और ये आविष्ट हो जाते हैं अतः विद्युत् चालकता बढ़ जाती है।

४—भिन्न-भिन्न जगहों पर ओपोणके समाहरण (concentration) को मालूम करना। जैसे हम पहले लिख आये हैं ऊर्ध्व मंडलके ऊपर एक सतह है जहाँ ओपोण काफी अधिक है और इसीके कारण सूर्यकी अति सूक्ष्मकिरणोंकी तेज गर्मी पृथ्वी तक नहीं पहुँचने पाती; नहीं तो यहाँ पर जीवधारियोंका रहना असंभव हो जाता। ओपोण इन नाशकारी किरणोंको शोषण कर लेता है।

५—भिन्न-भिन्न सतहोंपरसे ऊर्ध्व मंडलकी हवाके

नमूने इकट्ठे करना। बादमें इन नमूनोंकी भौतिक तथा रासायनिक प्रयोगशालाओंमें जांचकी जाती है।

६—कीटाणुकी जांच करना। यह देखना कि जीवित कीटाणु ऊर्ध्व-मंडलमें तैर सकते हैं तथा वे वहाँकी स्थितिमें जीवित रह सकते हैं या नहीं। नीची सतहोंमें यह देखा गया है कि जो कीटाणु तैरते रहते हैं वे अपने साथ बीमारियां ले जाते हैं जिससे वृक्षोंको तथा कृषिको बड़ी हानि पहुँचती है।

७—यह देखना है कि ऊर्ध्व मंडलकी स्थितिमें फूलोंकी मक्खियों पर क्या प्रभाव पड़ता है, तथा ऊर्ध्व मंडलमें जो किरणें आती है उनका उनके बच्चे देनेकी शक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है, और ऊपर लेजाई हुई मक्खियोंके बच्चोंमें किस किस तरहके परिवर्तन होते हैं।

८—गुब्बारोंके उड़ते समय जो समस्यायें उपस्थित होती हैं उनकी जांच करना। जैसे यह दिखाना कि एक बड़े गुब्बारेमें हिमजन (हीलियम) गैस कैसे काम करती है तथा चारों तरफकी हवासे यह कितना ज्यादा गर्म हो जाती है। इसके इस तरहसे अत्यन्त तप्त होनेके कारण यह गैस और ज्यादा फैलती है अतः इसकी ऊपर उठनेकी शक्ति और बढ़ जाती है। जब आकाशमें सूर्य ढल जाता है अथवा गुब्बारा किसी बादलके नीचेसे गुज़रता है तो यह तप्तता बिल्कुल कम हो जाती है।

९—विशेष रूपसे अंशमापन किये हुए-वायु-दबाव लेखक (barograph) को देखना और फिर इसकी सहायतासे बताना कि गुब्बारा ठीक-ठीक कितनी ज्यादा ऊँचाई तक पहुँच सका।

१०—एक ऐसे कैमरासे जिसका नाभ्यंतर बिल्कुल ठीक मालूम हो ठीक नीचेकी तरफ फोटोग्राफ लेकर गुब्बारे की ऊँचाई ठीक-ठीक मालूम करना। फिर इस तरहसे मालूमकी हुई ऊँचाईका बैरोमीटरकी सहायतासे मालूमकी गई ऊँचाईसे मिलान करना। अतः बैरोमीटरकी सहायतासे ऊँचाई मालूम करनेके लिये जो (सूत्र जो हवाके घनत्वके वार्षिक औसत पर निर्भर है), काममें लाया जाता है उसकी प्रतिशत यथार्थता मालूम हो जाती है।

११—आकाश, सूर्य तथा पृथ्वीकी चमककी तुलना करना। जैसे-जैसे हम ऊपर उठते हैं आकाश काला, तथा सूर्य अधिक चमकदार होता जाता है यहां तक कि १० मील ऊपर आकाशमें बिल्कुल काला हो जायगा और तारे दृष्टि-गोचर होने लगेंगे। पृथ्वीकी चमक या इसकी सूर्यकी रोशनीको परावर्तन करनेकी शक्ति--जिसे ज्योतिषी अल्बैडो (Albedo) कहते हैं, चन्द्रमाकी ऐसी शक्तिसे छः गुनी मानी जाती है। इन सब बातोंकी जाँच करना।

१२—पृथ्वीकी वक्रता बतानेके लिये परालाल किरण (infra red) फोटोग्राफ लेना। इसके लिये एक विशेष

तरहका कैमरा काममें लाया जाता है जिसमें एक ठोस लाल काँचका टुकड़ा या निःस्यन्दक (filter) लगा रहता है और ऐसी फिल्म जो परालाल किरणोंके लिये विशेष रूपसे सुग्राहक होती है काममें लाई जाती है। इसकी सहायतासे हम कोहरे, धुंधलापन आदिके अन्दरसे भी तसवीर ले सकते हैं।

१३— गोण्डोलाकी काँचसे ढकी खिड़कियोंमें से गति-चित्रोंका लेना, और इनसे इस बातकी जाँच करना कि ऊपर जाते समय किस तरह पृथ्वी दूर होती हुई मालूम होती है तथा गुब्बारा किस तरहसे फैलता और खुलता है।

१४—बहुत ऊंचाईसे पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोंकी तसवीर लेना।

१५— भिन्न-भिन्न ऊंचाई पर चुम्बकीय क्षेत्रकी जाँच करना और इसके प्रभावको भिन्न-भिन्न यंत्रों पर देखना।

१६— विश्व-किरणोंकी जाँच करना। विश्व-किरणें आधुनिक विज्ञानकी मनोरंजक और अत्यन्त महत्व रखने वाली समस्याओंमेंसे एक हैं। इन किरणोंकी शक्तिका अनुमान कर, उनकी प्रकृतिको जानकर, तथा ऐसी विधियोंको निकाल कर जिनसे हम इनको वशमें कर सकें, हम केवल एक तत्वको दूसरे तत्वमें परिवर्तन करनेमें ही सफल नहीं होंगे बल्कि जो महान् शक्ति एक परमाणुमें विद्यमान है उसे

स्वतन्त्र करके तमाम मनुष्य-मात्रको सेवाके काममें ला सकेंगे।

अगले अध्यायमें हम इन उड़ानोंके विषयमें विस्तारसे लिखेंगे।

अध्याय ३

ऊर्ध्वमंडलकी उड़ानें

सर्व प्रथम सन् १७८३ ई० में ऐसे गुब्बारे काममें लाये गये जिनकी सहायता से वैज्ञानिक एक टोकरेमें बैठकर वायुमंडलके ऊपर जा सकते थे। इस तरहके गुब्बारोंकी सहायता से साहसी वैज्ञानिक वायुमंडलके ऊँचे-से ऊँचे भागोंकी खोज करने और वहाँके तापक्रम, आर्द्रता आदिके विषयमें निर्दिष्ट संग्रह करनेके लिये अत्यन्त उत्साहित हुए। परन्तु उनको यह बहुत शीघ्र ही विदित हो गया कि ऐसा करना बहुत जोखमका सामना करना है क्योंकि बहुत ऊँचाई पर दबाव इतना कम है तथा ठंड इतनी अधिक है कि मनुष्यके शरीरसे रक्त फूट-फूट कर निकलने लगेगा तथा आँखें जम जावेंगी; इसके अतिरिक्त वहाँका वायुमंडल इतना सूक्ष्म है कि साँस लेना असम्भव है और खोज करने वाले वहाँ बेहोश हो जावेंगे। शुरू ही शुरूमें जो लोग ऊपर उड़ते थे वे चाहते थे कि हम जितना अधिक हो सके ऊपर जावें। वे अपने हाथमें गुब्बारेके वाल्वकी रस्सी पकड़े रहते थे ताकि जब वे चाहें गुब्बारेको नीचे उतार सकें। परन्तु वे इतनी जल्दी बेहोश हो जाते थे कि रस्सीको

खींचनेकी नौबत ही नहीं आती थी और गुब्बारा उस शांत ठंडी हवामें उड़ता चला जाता था और अन्तमें वे एक विचित्र परन्तु शानदार मृत्युको प्राप्त होते थे।

प्रथम उड़ाके

सन् १८६१ ई० में इसी तरहकी एक बड़ी बहादुरीकी उड़ानमें उड़ने वालोंको सफलता भी प्राप्त हुई। ये बहादुर उड़ाके ग्लेयशर (Glaisher) और कॉक्सवैल (Coxwell) थे जो ब्रिटिश एसोसियेशनकी तरफसे प्रयोग करते हुए ७ मील ऊपर तक ऊर्ध्व मंडलके नीचेके भागमें पहुँचनेमें सफल हुए। इन उड़ाकोंको अधिक श्रेय इसलिये और है कि वे अनुसन्धानके आधुनिक यन्त्रोंकी सहायता बिना ही इस ऊँचाई तक पहुँचनेमें समर्थ हुए। न तो साँस लेनेमें मदद करनेके लिये उनके पास कोई ऑक्सीजन यन्त्र था, न कड़कड़ाती ठंडको सहनेके लिये कोई बिजलीसे गरम किये हुए कपड़े और न पृथ्वी पर जैसा वायु-दबाव अपने चारों तरफ बनाये रखनेके लिये कोई वायुरोधक गोण्डोला (Gondola)। इन आधुनिक सुविधाओंका ध्यान रखते हुए हम अनुमान कर सकते हैं कि ऊपरी वायुमंडलकी बहुत-सी समस्याओंको हल करनेके लिये एक टूटे हुये मामूली टोकरेमें बैठकर ऊपर उड़नेके लिये कितने अधिक साहस तथा बहादुरीकी आवश्यकता थी। इस

उड़ानके बाद कई लोगोंने ऊपर उड़नेकी कोशिश की परन्तु इनमेंसे ऊर्ध्वमंडलमें सबसे अधिक ऊपर पहुँचनेके लिये संयुक्त राज्यके हवाई बेड़ेके कप्तान हाथार्न ग्रे (Howthorn Grey) ने जिस बहादुरीके साथ अपनी जान दी वह अत्यन्त सराहनीय है। ४ नवम्बर सन् १९२७ ई० को कप्तान ग्रे साँस लेनेमें सहायता देने वाले ऑक्सीजन-यन्त्रके साथ एक खुले हुए टोकरेमें बैठकर ऊपर उड़े और ८.०४ मील ऊपर चढ़ गये। अतः वे ऊर्ध्व मंडलमें घुसने वाले प्रथम पुरुष थे यद्यपि वापस उतरते समय कड़-कड़ाती ठंढ तथा हलकी हवाके कारण उनकी मृत्यु हो गई। कप्तान ग्रे अपनी इस अन्तिम उड़ानका तमाम वर्णन एक लट्टे पर लिखा हुआ छोड़ गये हैं। अन्तमें इस लट्ठेको कप्तान ग्रेकी पत्नीने राष्ट्रीय म्यूजीयमके उड्डयनविद्याके अध्यक्ष पाल गारबर (Paul Garber) को दे दिया। इस पर अभी तक कप्तानके दस्तानेके निशान विद्यमान हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं है कि जो-जो बातें कप्तान ग्रेकी उड़ानसे मालूम हुईं उनसे बादकी ऊर्ध्वमंडलकी उड़ानोंको सफल बनानेमें बहुत सहायता मिली है।

प्रोफेसर पिकार्डकी प्रथम उड़ान

जैसा सर्व संसारको विदित है गुब्बारेकी सहायतासे ऊर्ध्वमंडलके अन्दर जाकर जीवित लौट आने वाले प्रथम

पुरुष ब्रूसल्स विश्वविद्यालयके प्रोफेसर अगस्ट पिकार्ड थे जो दो दफ़ा ऐसी ऊँचाई तक उड़े जहाँ तक पहले मनुष्य कभी नहीं पहुँचे थे। इनको इन दोनों उड़ानोंने संसारको दो बातें साफ-साफ बता दीं। पहला तो यह कि ऊर्ध्वमंडल में जाने और वहाँसे जीवित वापस लौट आनेके लिये जिन-जिन आवश्यकीय वस्तुओंका इन्होंने अनुमान लगाया था वे सच निकलीं और दूसरे, जिस उद्देश्यसे यह उड़ानकी गई थी वह भी सही प्रमाणित हो गई। बहुत तेज़ हवाओंके अतिरिक्त (जो भाग्यवश इनके समयमें नहीं चल रही थीं) दस मील तकके लिये जो कुछ अनुमान निचले वायुमंडलके विषयमें इन्होंने लगाया था वह बिल्कुल ठीक था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि अब वहाँ तक फिरसे उड़ना या वहाँसे और भी ऊपर उड़नेका प्रयत्न करना व्यर्थ है। इससे तो केवल यह विदित होता है कि जिस रास्ते पर वैज्ञानिक चल रहे थे वह बिल्कुल ठीक था।

डा० पिकार्ड ने उड़ानके समय बहुत-सी आवश्यकीय वस्तुएँ जुटा ली थीं और इनमें सर्व-प्रथम वह मशहूर गोण्डोला था जो इनको बड़ी आसानीसे ऊपर ले गया। यह ऐल्यूमीनियम और टिनकी मिश्रित धातुका बना हुआ एक गोला था जिसका व्यास ८२ इंच था और इसकी तौल १०० पौण्ड थी। परन्तु जब इसमें दोनों उड़ाके तथा तमाम यन्त्र रहते थे तब इसकी तौल ८०० पौंड हो

गयी। जब इसकी तमाम खिड़कियाँ बन्द कर ली जाती थीं तब इसमें बाहरसे भीतर तथा भीतरसे बाहर कोई हवा नहीं जा सकती थी। इसीलिये इसमें जैसा चाहे वायु-दबाव रक्खा जा सकता था। इसमें साँस लेनेसे जो ओषजनकी कमी होती थी उसे पूरा करनेको तथा साँससे निकले हुये कार्बन-डाई-ऑक्साइडको सोखनेके लिये भी यन्त्र थे जिनसे उसके अन्दरकी हवा बिल्कुल साफ रहती थी।

डा० पिकार्डको अपने गोण्डोला तथा गुब्बारेके बनाने के लिये आर्थिक सहायता नेशनल-फंड-आफ़ साइण्टीफिक रिसर्चसे मिली और इसीके नाम पर इन्होंने अपने गुब्बारेका नाम एन० अफ० एस० आर० (N. F. S. R.) रक्खा। उस गुब्बारेका आयतन इसके पूरे फैल जाने पर ५००००० घन फुट था। २७ मई सन् १९३१ ई० को ऑगसबर्ग (Augsburg) से डा० पिकार्डने ऊर्ध्वमंडलकी खोजका श्रीगणेश किया। इनके साथ इनके सहायक पाल किपर (Paul Kipper) भी गये थे। अपने गुब्बारेको नीचे उतारनेके पहले ये ५१७५५ फुट (९'८१ मील) ऊपर पहुँच गये थे, जहाँ पहले कोई जीवित पुरुष तथा पक्षी भी नहीं पहुँच सके थे। बहुत ऊपर पहुँचनेके बाद उन्होंने देखा कि इनका गुब्बारा आल्प्स पहाड़के ऊपर आ गया है और जब इन्होंने अपने आपको तथा तमाम संग्रह किये हुए निर्दिष्टको बचानेके लिये नीचे उतरना चाहा तो इनका

उड़ानके समय हलका करनेको बोझा गिरानेके लिये जो यन्त्र थे तथा और दूसरे यन्त्र जो गोण्डोलाके बाहर लगे हुये थे सब बिजलीसे काम करते थे और इनकी देख-रेख अंदरसे ही की जा सकती थी। जो गुब्बारा यह लोग काममें लाये थे वह प्रोफेसर पिकार्डके गुब्बारेसे बड़ा था। इसका व्यास ११७ फुट था और जब यह पूरा फूल जाता था तो इसका आयतन ८८०,००० घन फुट हो जाता था। अपने साथ ये लोग एक रेडियो-प्रेषक तथा ग्राहक भी ले गये थे जिनकी सहायतासे ये मास्कोके पोपफ स्टेशन (Fopoff - Station) से बातें कर सकते थे।

ए-सेनचुअरी-ऑफ-प्रोग्रेस की उड़ान

यद्यपि प्रोफेसर पिकार्डकी दोनों शानदार उड़ानोंने सर्व संसारमें दिलचस्पी पैदा कर दी परन्तु जैसा ऊपर कह आये हैं रूस ही पहला देश था जिसने अपनी इस दिलचस्पीको प्रयोगमें लाकर संसारके सामने रक्खा और प्रोफेसर पिकार्डकी दूसरी उड़ानके रिकार्डको मात कर दिया परन्तु इसके भाग्यमें इस रिकार्डको बहुत समय तक रखना बदा नहीं था। अमरीकाके संयुक्त राज्य ने भी इसका बहुत शीघ्र अनुकरण किया और २० नवम्बर सन् १९३३ ई० को कमांडर यू० एस० एन० आर० की उड़ानके केवल मात्र

इसके बाद ही यू० एस० जहाज़ी बेड़ेके लेफ्टीनेण्ट-कमाण्डर टी० जी० डबल्यू-सटिल और यू० एस० "मैरीन कोर" के मेजर चस्टर-एल० फ्रोडनी ओहियोके अकरानसे उड़े। इनके गुब्बारेका नाम ए-सेनचुअरी-ऑफ़-प्रॉग्रेस (A-Century of-Progress) था। इसमें लेफ्टीनेण्ट कमाण्डर सटिल तो गुब्बारे के उड़ानेके लिये थे और मेजर फ्रोडनी तमाम वैज्ञानिक यंत्रोंको जाँच करनेके लिये थे। आठ घंटेसे कुछ अधिक समय तक उड़कर ये न्यूजरसी में ब्रीजटनसे सात मील दक्षिण-पश्चिमको सुरक्षित उतरे। ये सबसे अधिक ऊँचे ६१२३७ फुट (११'५६ मील) तक उड़े। अतः यू० एस० एस० आर०के रिकार्डको ५४२ फुटसे मात किया। इनके गुब्बारेका आयतन इसके पूरे फैल जानेपर ६००००० घन फुट था। यह प्रोफ़ेसर पिकार्डके गुब्बारे आफ० एस० आर० ए० (५००००० घन फुट) से थोड़ा बड़ा और रूसी उड़ाकेके गुब्बारे यू० एस० एस० आर (८८०,००० घन फुट) से कुछ छोटा था। इन्होंने अपने गुब्बारेको सब से अधिक ऊँचाई पर लगभग दो घंटे तक रक्खा और वहाँ पर विश्व किरणों और पराकासनी किरणोंके विषयमें अच्छा निर्दिष्ट संग्रह किया। लेफ्टीनेण्ट कमाण्डर सटिलकी इस उड़ानकी सफलताने अमरीकामें ऊर्ध्वमंडलकी खोजके लिये गुब्बारोंकी उड़ानमें और भी अधिक दिलचस्पी पैदा कर

की और यही कारण है कि आजकल अमरीका इस विषयमें संसारमें सबका अग्रणी है और जैसा हमारे पाठकोंको आगे चल कर मालूम होगा आजकल अमरीकाके कैप्टेन अलबर्ट डबल्यू० स्टीवन्सका संसारमें सबसे ऊँचे (७२३६५ फुट) उड़नेका रिकार्ड है ।

रूसकी द्वितीय उड़ान

सन् १६३४ ई० में ऊर्ध्वमंडलकी खोजके लिये चार उड़ानें हुई । ३० सितम्बर १६३३ ई० की उड़ानकी पूर्ण सफलतासे उत्साहित होकर रूसकी ऑल यूनियन कान्फ्रेंस ने फिरसे एक दूसरी उड़ान करनेका विचार किया । इसके लिये बड़ी धूम-धामसे तैयारियाँ होने लगीं । इस समय गोण्डोला भी नई तरहका बनाया गया । यह ऐलूमिनियम-की जगह साफ़ अचुम्बकीय इस्पात (non-magnetic steel) का बना था और इसकी दीवारकी मोटाई एक कागज़की मोटाईसे अधिक नहीं थी । इससे यह बहुत ही हलका होगया था और इसलिये इसमें और भी अधिक यंत्र रख कर ले जाये जा सकते थे । इसके लगभग सब यंत्र आपसे आप काम करते थे और ये यू० एस० एस० आर० में भेजे गये यंत्रोंसे अच्छे तथा सुग्राहक थे । इनका गुब्बारा भी पहलेकी उड़ानोंके गुब्बारोंसे काफी बड़ा था और एक नई तरहकी रबरवेष्ठित महीन मलमलका

चित्र ७

गुब्बारा लैफ्टीनेण्ट-कमाण्डर स्टिलको लेकर सोलजर्स फील्ड चिकागोसे उड़ने वाला है।

बनाया गया था। इनकी यह उड़ान, जो सन् १६३४ ई० की पहली उड़ान थी, ३० जनवरीको हुई। इसमें फेडोसियंको (Fedoseyenko) और ऑसाइस्किन (Ousyskin) तो गुब्बारेके उड़ानेके काम पर थे और एम. वेसंको (M. Vasenko) जिन्होंने गुब्बारेको बनाया था यंत्रोंकी जाँच करते थे। इन्होंने और दूसरी बातों की अच्छी तरहसे जाँचके अतिरिक्त यह भी बताया कि जैसे जैसे हम ऊपर जाते हैं आकाशका रंग नीलेसे बैंजनी तथा बैंजनीसे भूरे रंगमें कैसे बदलता जाता है।

यह गुब्बारा काफी ऊँचाई पर पहुँच गया और जब ये लोग वापस उतर रहे थे तो अभाग्यवश वे रस्सियाँ जो गोण्डोलाको गुब्बारेसे बाँधे हुये थीं टूट गईं और गोण्डोला बड़ी तेज़ीसे आकर ज़मीनसे टकराया और इसमेंके तीनों उड़ाकोंकी तुरन्त मृत्यु हो गई। इस दुर्घटनाके कारणोंकी जाँच करनेके लिये एक कमेटी बैठाई गई और इसने बताया कि उतरते समय गुब्बारेकी गति इतनी तेज़ हो गई थी कि यह समतुलित न रह सका। इसीलिये किसी कारणसे गोण्डोलाको गुब्बारेसे बाँधने वाली रस्सियों ने जवाब दे दिया। गोण्डोलाके बहुतसे यंत्र तो बिल्कुल चकनाचूर हो गये, परन्तु कुछ बिल्कुल खराब नहीं हुये और इन्हींकी जाँच करके यह बतलाया गया कि गुब्बारा ७२१७६ फुट (१३·६७ मील) की ऊँचाई तक गया।

"एक्सप्लोरर प्रथम" की उड़ान

रूसकी इस उड़ानकी दुर्घटना ने वैज्ञानिकोंको हतोत्साह करनेके विपरीत और अधिक उत्साहित किया। सन् १९३३ के अन्तसे ही वाशिंगटन डी० सी० की राष्ट्रीय भौगोलिक परिषद्ने ऊर्ध्वमंडलकी खोज करनेका विचार किया। इसने संयुक्त राज्यके हवाई बेड़े तथा दूसरी संस्थाओं और व्यक्तियोंकी जो ऊपर वायुमंडलको जाननेमें बड़ी दिलचस्पी रखते थे, सहायतासे एक बहुत बड़ी उड़ानकी सोची। इस समय इनका उद्देश्य ऊपरी वायुमंडलके विषयकी सब ज्ञातव्य बातोंको मालूम करना था। इनके लिये इतने धूमधामसे तैयारियाँ होने लगीं कि पहलेकी उड़ानोंकी सब तैयारियाँ इनके सामने कुछ नहीं थीं। इस उड़ानमें जो गुब्बारा काममें आनेको था उसका आयतन जब यह पूरा फैला हुआ हो तो ३०००००० घन फुट था। यह दो आदमियों सहित १५ मीलकी ऊँचाई तक जानेको बना था। इसकी विशालताका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि पहले जो सबसे बड़ा गुब्बारा बना था उससे यह चार गुना बड़ा था। उड़ानके समय यह २९५ फुट ऊँचा रहता था, यानी यह लगभग कुतुबमीनार के बराबर ऊँचा था। इस उड़ानके लिये अमरीकाके बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंकी एक कमेटी बनाई गई थी जिसके सभापति डॉ० लेमैन जे० ब्रिग्स थे। इस कमेटीका उद्देश्य यह

बताया गया था कि किन-किन वैज्ञानिक विषयोंकी खोज इस उड़ानमेंकी जावे तथा इनके लिये कौन-कौनसे यंत्र किस-किस तरहसे काममें लाये जावें। इस कमेटीकी सहायतासे सबसे बढ़िया यंत्र गोण्डोलामें लगाये गये और सब यंत्र लगभग उतने ही बड़े थे जितने कि प्रयोगशालाओंमें काममें लाये जाते हैं ताकि काफी यथार्थतासे निर्दिष्ट संग्रह किया जा सके। परन्तु ऐसा करनेसे सब यन्त्र काफ़ी बड़े तथा भारी हो गये थे। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि केलीफोरनिया-इन्सटीट्यूट-आफ-टेकनॉलॉजी ने जो तीन विद्युद्दर्शक (electroscope) दिये थे उनमेंसे एक तो खुला हुआ था, दूसरा चार इंच मोटी तहसे चारों तरफ ढका हुआ था जिसमें बारीक-बारीक शीशेके छर्रे भरे थे और तीसरा इसी तरहकी छः इंच मोटी तहके ढका था। केवल तीसरे विद्युद्दर्शककी ही तौल छः सौ पौण्ड थी। बड़ा तथा भारी यंत्र होनेके कारण गोण्डोला भी काफ़ी बड़ा बनाया गया था। यह ६ फुट ४ इंच व्यासका एक बड़ा गोला था और इसका आयतन प्रोफेसर पिकार्ड या लेफ्टीनण्ट कमाण्डर सूटिलके गोण्डोलाके आयतनसे लगभग दूना था। यह धातु विशेष डौ-मेटेल (Dow metel) का बना था जो काफ़ी मज़बूत तथा हलका होता है और इसकी तौल सिर्फ ४५० पौण्ड थी। यदि यह डौ-मेटेलके स्थानमें लोहे का बना होता तो इसकी तौल एक टन होती।

इस उड़ानके व्ययका बहुतसा भाग राष्ट्रीय भौगोलिक संस्था ने दिया था। इस उड़ानकी सबसे अद्भुत बात यह थी कि इसके सब भाग बीमा करा दिये गये थे ताकि उड़ान असफल होने पर अधिक आर्थिक हानि न हो। इसमें उड़कर हवाई सेनाके तीन अफसर मेजर-इ-कैपनर, कैप्टेन अलवर्ट-डब्लू-स्टीवन्स और कैप्टेन आर्विल-ए- एण्डरसन गये थे। यह तीनों बहुत होशियार उड़ाके थे और सन् १९१४-१८ ई० के महायुद्धमें बहुत बहादुरी तथा साहस दिखाने पर इन्हें कई पदक मिले थे। २८ जूलाई सन् १९३४ ई० को यह गुब्बारा जिसका नाम 'एक्सप्लोरर प्रथम' रक्खा गया था दक्षिणी डकोटा के ब्लैक हिल्स नामक स्थान से जो कि रपिड नगरसे सिर्फ १२ मील दक्षिण-पूर्व को था, उड़ा। यह स्थान ऐसी उड़ानोंके लिये बहुत ही उपयुक्त था क्योंकि यह एक प्यालेकी शकलका बना था और इसके चारों तरफ ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ थीं। अब यह जगह स्टेटोकैम्पके नामसे प्रसिद्ध है। इस उड़ानकी सबसे विशेष बात यह थी कि इन्होंने गुब्बारेको बीच-बीचमें एक ही सतह पर काफ़ी समय तक रखकर अच्छा निर्दिष्ट संग्रह किया। सबसे पहले ये ४०,००० फुट वाली सतह पर लगभग १½ घंटे रुके और उसके बाद ६०,००० फुट से कुछ ऊपर उठे कि एक चरररकी आवाज़ आई और गुब्बारेके नीचेका भाग फट गया तथा इस जगह जो रस्सा

बँधा था वह गांडोला पर आकर गिरा। अब इन्होंने गुब्बारेको तुरन्त नीचे उतारनेके लिये वाल्वसे गैस निकालनी आरंभकी। २० मिनटके परिश्रमके बाद गुब्बारा नीचे उतरने लगा। जैसे-जैसे यह नीचे उतरता था गुब्बारा अधिक फटता जाता था। २०,००० फुट पर आने पर तो नीचेका भाग काफ़ी फट गया और इसके अन्दरका सारा हिस्सा दिखाई देने लगा। इस समय इन्होंने अपने भारी-भारी यंत्रोंको अवतरण छत्रकी सहायतासे नीचे गिराना आरंभ किया और साथ ही शीशेके बुरादेको भी। परन्तु अब गुब्बारेकी दशा इतनी खराब होती जा रही थी कि ६,००० फुटकी ऊँचाई तक पहुँचने पर इन्होंने गांडोलासे कूदनेका तथा अवतरण छत्रों की सहायतासे उतरनेका विचार किया। मेजर कैपनर तो बड़ी आसानीसे कूद गये परन्तु जब कैप्टेन एंडरसन कूदने लगे तो उनके अवतरण छत्रके खोलनेके यंत्रमें कुछ खराबीसी मालूम हुई और इन्होंने दरवाजे पर खड़े ही खड़े अवतरण छत्रको खोलकर इसकी तहोंको हाथमें लेकर कूदनेकी सोची। इनके दरवाजे पर होनेके कारण कैप्टेन स्टीवन्स भी कूदने नहीं पाये और जैसे ही कैप्टेन एंडरसन ने कूदकर इनके लिये जगह की कि एक बहुत ही अनहोनी बात हुई। गुब्बारा फट पड़ा और गांडोला कैप्टेन स्टीवन्सको लेकर पृथ्वीकी तरफ बड़े वेगसे गिरने लगा। अब इन्होंने दरवाज़ेसे कूदनेका प्रयत्न किया

परन्तु हवा वहाँ इतने वेगसे चल रही थी कि उसने इन्हें वापस ढकेल दिया। इन्होंने दो बार प्रयत्न किया और दोनों बार असफल रहे। अन्तमें यह अपने सरके बल कूद पड़े परन्तु फिर भी यह गोंडोलाकी गतिसे ही नीचे गिर रहे थे जो १ मील प्रति मिनट थी। इन्होंने बड़ी शान्तिके साथ अपने तमाम बदनको एक चक्कर किया और अवतरण छत्र को खोल दिया। परन्तु अब अवतरण छत्र पर गुब्बारेका टूटा भाग जो गोंडोलाके ऊपर था आ गिरा और इन्हें फिरसे अपने साथ ले जाने लगा। भाग्यवश यह थोड़ी देरमें फिसल गया और यह बिलकुल स्वतन्त्र हो गये। ४० सेकण्ड बाद इन्होंने गोंडोलाके पृथ्वी पर टकरानेका धमाका सुना। कुछ समय बाद यह भी सुरक्षित पृथ्वी पर उतर आये। तीनों उड़ाके अपना-अपना अवतरण छत्र समेट कर वहाँ पहुँचे जहाँ गोंडोला चूर-चूर पड़ा था। इन्होंने आत्म-लेखक यंत्रोंके साथकी फिल्मोंको बड़ी जल्दी-जल्दी लपेटकर रक्खा जिससे यह और अधिक ख़राब न हों क्योंकि इनमें काफ़ी समय तक रोशनी पड़नेसे यह पहले ही कुछ ख़राब हो गई थीं। गोंडोलाके अन्दर बहुतसे यंत्र चूर-चूर हो गये थे परन्तु फिर भी जो कुछ थोड़े बचे थे उनको इन्होंने निकालकर अलग रक्खा। इनकी सहायतासे मालूम हुआ कि गुब्बारा ६०६१२ फुट ऊपर तक जा सका और यदि वह फटा न होता तो यह १५,००० फुट और अधिक चला जाता।

यद्यपि गुब्बारेके फटने तथा गोंडोलाके टूट जानेसे बहुत ज़्यादा आर्थिक हानि हुई, परन्तु इन सब चीज़ोंके बीमा होनेके कारण यह हानि काफ़ी कम हो गई।

डा० मैक्स क़ाज़िनकी उड़ान

इस उड़ानके कुछ समय बाद ही डा० मैक्स काज़िन (Max Cosyns) जो प्रोफेसर अगस्ट पिकार्डके साथ उनकी दूसरी उड़ानमें उड़े थे, अपने विद्यार्थी एम, वाण्डर एल्स्टके साथ उड़े। यह उड़ान १८ अगस्त सन् १९३४ ई० को बेलजियमके आरडनीज़में हावर हैवेनसे हुई। ५२३२६ फुट (१० मीलसे कुछ अधिक) की ऊँचाई तक पहुँच कर ये १००० मीलकी दूरी पर यूगो-स्लावियामें ज़ेनेवल्ज़ पर सुरक्षित उतरे। यह वे ही गुब्बारा काममें लाये जिससे शुरूमें प्रोफेसर पिकार्ड उड़े थे, परंतु इसमें कुछ परिवर्तन कर दिये गये थे जिससे यह गुब्बारा जिस स्तर पर चाहे आसानीसे ठहराया जा सकता था। इस उड़ानमें गोंडोला दूसरा बनाया गया था। इस उड़ानका उद्देश्य विशेषतः विश्वकिरणोंकी जाँच करना था।

डा० जोन पिकार्डकी अपनी धर्म-पत्नी सहित उड़ान

सन् १९३४ ई० की अन्तिम उड़ान २३ अक्टूबरको हुई जिसमें प्रोफेसर अगस्ट पिकार्डके जुड़वा भाई डा० जीन पिकार्ड अपनी धर्मपत्नी सहित उड़े। यह उड़ान संयुक्त राज्यके डाट्राइटके पास वाले फोर्ड ऐअर पोर्टसे हुई।

ये १०'६ मीलको ऊँचाई तक पहुँच कर ओहियोमें केडिज़के पास सुरक्षित उतरे। डा० जीन पिकार्डकी धर्मपत्नी मिसेज़ जेनीटी पिकार्ड पहली स्त्री हैं जिन्होंने गुब्बारेकी उड़ानका लाइसेन्स लिया था और इसके साथ-साथ यह संसारमें अकेली स्त्री हैं जो ऊर्ध्वमंडल तक हो आई हैं। इनके गुब्बारेका आयतन ६००,००० घन फुट था। इनकी इस उड़ानका भी उद्देश्य अधिक ऊँचाई तक पहुँचना नहीं था बल्कि विश्वकिरणों तथा वैज्ञानिक बातोंकी खोज करना था।

रूसकी तीसरी उड़ान

यू०-एस०-एस०-आर० गुब्बारेकी दुर्घटनासे रूसके वैज्ञानिकों ने ऊपरी वायुमंडलको खोजके लिये ऐसे गुब्बारे ही काममें लानेकी सोची जिसमें आदमी बैठकर न जाते हों और इसी समयमें वहाँ पर रेडियो मीटिओराग्राफ़ आदि पर जिनका वर्णन हम पहले कर आये हैं काफ़ी खोज हुई। परन्तु यह आदमी बैठकर जाने वाले गुब्बारोंको नहीं पा सकते और इसीलिये २६ जून सन् १९३५ ई० को यानी यू०-एस० एस०आर० की उड़ानके डेढ़ साल बाद फिर एक उड़ान हुई इसमें एम-क्रीसटापज़िल (M. Christopzille) और एम- प्रिलुट्स्की (M. Prilutski) गये थे और इनके साथ लेनिनग्राड वेधशालाके प्रोफेसर वेरीगो (Varigo) भी थे। यह रूसके बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंमें से हैं और रश्मिशक्तित्व (radio-acti-

vity) तथा विश्वकिरणोंमें दक्ष समझे जाते हैं। यह उड़ान मास्कोके एक एयरोड्रोम से हुई। सबसे ऊँचे १० मील तक जाकर ढाई घंटेकी उड़ानके बाद ये सब सुरक्षित उतरे। इस उड़ानका भी उद्देश्य विश्वकिरणोंकी खोज करना था।

"एक्सप्लोरर द्वितीय" की उड़ान

सन् १९३४ ई० की "एक्सप्लोरर प्रथम" की असफलतासे विचलित न होकर प्रत्युत उसमें जो कुछ भी निर्दिष्ट संग्रह हुआ था उसकी जाँच करनेके लिये सन् १९३५ ई० में राष्ट्रीय भौगोलिक परिषद् ने फिरसे एक उड़ानकी सोची। इस उड़ानमें भी पहली उड़ानकी तरह अमरीकाके संयुक्त राज्यके हवाई बेड़े तथा अन्य बहुत-सी संस्थाओंने सहयोग किया। पहली उड़ानकी दुर्घटनाको विचारमें रखते हुए इस समय गुब्बारेमें हाइड्रोजन गैसके स्थानमें हिमजन (हीलीयम) गैसको भरनेका निश्चय हुआ क्योंकि पहली उड़ानमें गुब्बारेके फट पड़नेका कारण यह था कि जब यह नीची सतहों पर आया तो इसका हाइड्रोजन हवासे मिल गया था और किसी कारणसे इसमें वैद्युतचिनगारी लग जानेसे यह विस्फुटित हो गया था। हीलियम गैसमें ऐसा होनेकी कोई संभावना नहीं थी। परन्तु हीलियम गैसके हाइड्रोजनसे भरी होनेके कारण गुब्बारेको उतनी ही ऊंचाई तक पहुँचानेके लिये इसका

आयतन बढ़ाना पड़ा। इस समय गुब्बारेका आयतन ३७००००० घन फुट रक्खा गया जब कि "एक्सप्लोरर प्रथम" का आयतन ३०००००० घन फुट था। उड़ानके पहले यह पृथ्वी पर ३१६ फुट ऊंचा फैला हुआ था और एक बहुत बड़े राक्षसके समान प्रतीत होता था। इस गुब्बारेका नाम "एक्सप्लोरर द्वितीय" रक्खा गया। यही गुब्बारा अभी तक संसारमें सबसे बड़ा बनाया गया है। इस उड़ानमें गोण्डोलामें भी कई परिवर्तन किये गये। इसका व्यास ९ फुट कर दिया गया जब कि पहले वालेका व्यास केवल ८ फुट ४ इंच था, इसके कारण इसमें ७८ घन फुट जगह और बढ़ गई। इसके अतिरिक्त इसमें बहुत से यंत्र बाहरको तरफ लगाये गये थे और जब चाहें इनको अवतरण-छत्रकी सहायतासे नीचे गिराया जा सकता था। सीसेके बुरादेका बोझ भी बोरोंमें भर कर गोण्डलाके बाहर ही लटकाया गया था और इनमेंसे चाहे जितने बोरे अंदर एक विद्युत् स्पर्श करनेसे गिराये जा सकते थे। अतः गोण्डोलामें काफी जगह निकल आई थी। इस समय पहली उड़ानमें ले जाये गये सब यंत्रोंके अतिरिक्त और भी कई यन्त्र ले जाये गये थे। गोण्डोलाके ऊपर भी एक ८० फुटका अवतरण छत्र लगाया गया था जो यदि यह गुब्बारेसे अलग हो जावे तो भी सुगमतासे नीचे उतर सकता था।

इस उड़ानमें कैप्टेन स्टीवन्स तो इसके मुख्य अफसर बनाये गये और इनका काम यंत्रोंकी जाँच करना था तथा कैप्टेन आरविल ए० एण्डरसन गुब्बारेको उड़ानेके काम पर थे। बहुत समय तक अच्छे मौसमकी प्रतीक्षा करनेके बाद ११ जुलाईको उड़ान करना निश्चित हुआ। इसके लिये बड़े ज़ोरोंसे तैय्यारियाँ होने लगीं। इस समय भी उड़ान स्ट्रैटो कैम्पसे ही हुई जहाँसे "एक्सप्लोरर प्रथम" की उड़ान हुई थी। जब गुब्बारेमें सब गैस भर दी गयी और इसके नीचे गोण्डोला लगानेकी तैयारियाँ हो रही थीं कि अचानक गुब्बारेकी छत फट गई और तमाम गैस बड़ी तेजीसे आकाशमें उड़ गई तथा गुब्बारा नीचे काम करने वाले मज़दूरों पर आकर गिरा। यद्यपि वे थोड़ी देरके लिये गुब्बारेके नीचे दबे रहे परन्तु बहुत शीघ्र ही निकाल लिये गये और भाग्यवश किसीके कोई चोट नहीं आई। गुब्बारा तुरन्त ही अकरानकी गुडईयर-जैपलिन-फैक्टरीमें जो ओहियोमें है और जहाँ यह बना था भेज दिया गया। खोज करनेसे मालूम हुआ कि गैसके निकल जाने तथा गुब्बारेकी छतके फट जानेका कारण यह था कि जिस तरहसे छत बनी थी वह ठीक नहीं थी यद्यपि अभी तक जितनी उड़ानें हुई थी उनमें ऐसी ही छतें लगाई जाती थीं और किसीको आशा न थी कि यह धोखा देजायगी। अब यह छत दूसरे ढंगसे तथा काफी मज़बूतीसे लगाई गई और बहुत शीघ्र ही यह

चित्र ८
कैप्टिन स्टीवन्स और कैप्टिन एण्डरसन अपने गोण्डोलामें

और कैप्टेन एण्डरसन अपने गोण्डोलामें काम करते हुए दिखाये गये हैं। कुछ समय पश्चात् जब तमाम यंत्रोंकी जांच पूरी तरहसे होगई तब यह घोषणा की गई कि एक्सप्लोरर द्वितीय सबसे अधिक ७२३६५ फुट (१२'७१ मील) ऊपर जा सका था और यह अब संसारमें सबसे ऊंचाई तक जाने का रिकार्ड है। कैप्टेन स्टीवन्स तथा कैप्टेन एण्डरसनको इस उड़ानमें पूर्ण सफलता मिलने पर राष्ट्रीय भौगोलिक परिषद् ने अपना 'हुबार्ड' सुवर्ण पदक दिया जो इस संस्थाका सब से बड़ा पदक गिना जाता है। इसके उपरान्त इन्हें और भी कई पारितोषिक मिले।

इन उड़ानोंसे मालूम किये गये निर्दिष्ट

एक्सप्लोरर-द्वितीयकी उड़ानमें उन सब बातोंकी खोज हुई जो कि हम पिछले अध्यायमें लिख आये हैं और इसी-लिये इस उड़ानमें कम-से-कम ६४ भिन्न-भिन्न यंत्र ले जाये गये थे। हम इस उड़ानको वैज्ञानिक खोजके विचारसे पूर्ण कह सकते हैं अतः इस उड़ानमें जो जो निर्दिष्ट संग्रह किया गया उसीका यहाँ लिखना काफी होगा।

इस उड़ानमें जैसे-जैसे गुब्बारा ऊपर उठता जाता था वायुमंडलका तापक्रम कम होता जाता था। एक समय तो गोण्डोलाके बाहरका तापक्रम हिमांकसे ४० डिग्री सेण्टीग्रेड नीचे चला गया था। और उसी समय इसके अन्दरका

तापक्रम हिमांकसे ६ डिग्री सेण्टीग्रेड कम हो गया था। परन्तु जैसे-जैसे यह और ऊपर उठने लगा, अन्दरका तापक्रम बढ़ने लगा और सबसे अधिक ऊँचाई पर यह ६ डिग्री सेण्टीग्रेड हो गया। हमारे पाठकोंको यह बात पढ़कर बड़ा आश्चर्य होगा कि ४००० फुट वाली स्तर पर गोण्डोलाके बाहर तथा भीतर दोनों जगहका तापक्रम इस उड़ानकी सबसे ऊँची स्तरके तापक्रमसे काफी कम था। परन्तु वास्तवमें ऊर्ध्व मंडलमें यह तापक्रम उत्क्रमण (Temperature Inversion) हमेशा रहता है।

प्रायः कुछ लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि ऊँचे स्तरों परसे आकाश, सूर्य तथा पृथ्वी कैसी दिखाई देती होगी? इसका उत्तर एक्सप्लोरर-द्वितीयकी उड़ानसे काफी संतोषप्रद मिला। भिन्न-भिन्न स्तरों पर नेशनल ग्रेपलेक्स कैमरासे डुफे-कलर-फिल्म पर आकाशके कई चित्र लिये गये। यद्यपि यह चित्र शीशेसे ढकी खिड़कियोंके अंदरसे तथा आकाशके उस भागके लिये गये थे जो गुब्बारेकी आड़में आनेसे बच गया था, फिर भी यह काफी अच्छे थे। इन फिल्मोंको डेवेलप करने पर ज्ञात हुआ कि आकाशका सबसे ऊपरका भाग जो दिखाई देता था बहुत गहरा नीला था। क्षितिजके पास यह कुछ-कुछ सफेद सा था जो कुछ अंश ऊपर देखने पर नीला सा होता ज्ञात होता था। क्षितिजसे १० अंश ऊपर तो यह बिल्कुल वैसा ही नीला हो गया था

जैसा हम प्रायः पृथ्वी पर किसी साफ दिनको देखते हैं परन्तु २० अंशसे ऊपर देखनेसे यह गहरा होता मालूम होता था। अभाग्यवश गुब्बारेके ठीक ऊपर होनेके कारण आकाशको बिल्कुल सर पर देखना असंभव था परन्तु क्षितिजसे ५५ अंश ऊपर तक तो देखा जा सकता था और यहाँका रंग लगभग काला हो गया था; सिर्फ इसमें नीले रंग की झाँई मालूम होती थी। इस उड़ानकी सबसे अधिक ऊँचाई १४ मीलसे कुछ कम थी। पृथ्वीको चारों तरफ घेरे रहने वाली हवाका ९६ प्रतिशत भाग गुब्बारेके नीचे था अतः वहाँ कोई रजकण नहीं रह गये थे और गैसोंके परमा भी बहुत कम हो गये थे इसीलिये सूर्य-प्रकाश बहुत कम परिक्षिप्त होता था जिससे आकाश काला प्रतीत होने लगा। यदि आकाशको बिल्कुल सर पर देख सकते तो यह बिल्कुल काला नज़र आता और कुछ अधिक चमकीले तारे भी अवश्य दृष्टिगोचर होते।

आकाशकी चमक भी इसके रंगकी तरह वहाँ परके परमाणुओं तथा रजकणोंकी संख्या पर निर्भर है। इसकी जाँचके लिये पांच नलियाँ भिन्न-भिन्न कोणोंपर लगाई गयी थीं और इन नलियोंमें प्रकाश-वैद्युत-बाटरी (photo-electric cells) लगी हुई थीं जिनकी सहायतासे यह स्वयं-लेखक यंत्रोंमें अनुलेखित हो जाती थीं। इन लेखोंकी जांचसे ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं आकाश-

-की चमक घटती जाती है और सबसे अधिक ऊँचाई पर तो यह पृथ्वी पर की चमकको १० प्रतिशत ही रह जाती है। सूर्यकी रोशनीको भी नापनेके लिये तीन सैलें (cells) लगाई गई थीं। जिनमेंसे एक पर क्वार्ट्जकी खिड़की लगी थी ताकि सिर्फ नीललोहित किरणें ही अन्दर जा सकें। दूसरी पर एक विशेष शीशेका छन्ना (filter) लगा था जिससे पराकासनी किरणें अन्दर न जा सकें और तीसरी पर ऐसे निःस्यन्दक (छन्ने) लगे थे कि जो प्रकाश इनमेंसे आवे वह ऐसा प्रतीत हो जैसा कि यदि कोई मनुष्य देखे तो उसे प्रतीत हो। पहले दो यंत्रोंसे ज्ञात हुआ कि पृथ्वीके वायुमंडलमें सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणें काफी शोषित हो जाती हैं। इसी बातका समर्थन किरण-चित्र-दर्शक की जाँचसे भी होता है। तीसरे यंत्रसे ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे गुब्बारा ऊपर उठता गया सूर्यसे आने वाली रोशनी बढ़ती गई और उड़ानके सबसे ऊँचे स्तर पर यह पृथ्वीके धरातल परसे लगभग १२ गुनी हो गई। पृथ्वी पर और विशेषतः कोहरे वाले दिन तो हम सूर्यकी तरफ बड़ी आसानीसे देख सकते हैं परन्तु जैसे-जैसे हम ऊपर जाते हैं सूर्यका पीलापन कम होता जाता है तथा यह अधिक सफ़ेद होता जाता है, यहाँ तक कि ऊर्ध्वमंडलके ऊपर तो यह इतना अधिक सफ़ेद हो जावेगा कि इसकी चकाचौंधके कारण इसकी तरफ देखना असंभव है। फिर इसके चारों तरफ

आकाशके काले होनेके कारण यह और भी अधिक चमकीला प्रतीत होता है। इन सैलोंके अतिरिक्त एक सैल गोण्डोलाके ठीक नीचे पृथ्वीकी तरफ देखती हुई लगाई गई थी। यह पृथ्वीकी चमकके परिवर्तनोंको नापनेके लिये थी। इससे ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे गोण्डोला ऊपर जाता था पृथ्वीकी चमक बढ़ती जाती थी। इसका कारण यह था कि अब वहाँ सूर्यसे प्रकाश भी अधिक मिलता था तथा इस प्रकाश-को ऊपर परावर्तन करनेके लिये नीचे काफी वायुमंडल रहता जाता था।

इस उड़ानमें भिन्न-भिन्न स्तरों पर सूर्यकी रोशनीकी जाँच करनेको और विशेषतः सूर्यके वर्णपटको जाँच करनेको दो किरण-चित्र-दर्शक (spectrograph) ले जाये गये थे। इनमेंसे एक तो गोण्डोलाके बाहर था तथा दूसरा अन्दर। बाहर वाला यंत्र तो सूर्यकी सीधी किरणोंका वर्णपट लेनेको था और भीतर वाला क्षितिजसे १० अंश ऊपर आकाशका वर्णपट लेनेको। गुब्बारेके ऊपर उठते जाने पर इन दोनों यंत्रोंके वर्णपटमें जो परिवर्तन होता जाता था उसका फोटो इन यंत्रोंके लिये बनाई गई विशेष फिल्मों पर आपसे आप उतरता जाता था।

विश्व-किरणोंकी तरह सूर्यकी किरणें और विशेषतः छोटी-लहर लंबाई वाली किरणें वायुमंडलमें कुछ-कुछ शोषित हो जाती हैं अतः ऊंची सतहों पर लिया हुआ

सूर्यका किरणचित्र पृथ्वी पर लिये हुये किरणचित्रसे लम्बा तथा अधिक पूर्ण होगा। पृथ्वी पर किरणचित्रके छोटा होनेका कारण यह है कि सूर्यकी कुछ पराकासनी किरणोंको ओपोण जो वायुमंडलमें बहुत थोड़ा सा मिश्रित है शोषण कर लेता है। अतः यह पृथ्वी तक नहीं पहुँचने पातीं। यदि यह पृथ्वी तक पहुँच सकती तो यहाँ शायद सब जीवधारियोंका अन्त हो जाता। यदि वायुमंडलमें ओपोण आधा भी हो जाय तो हमारा सारा शरीर सूर्यके सामने दो चार मिनटोंमें ही झुलस जायेगा। इसके विपरीत यदि ओपोण कुछ और बढ़ जाय तो जो कुछ पराकासनी किरणें पृथ्वी तक आती हैं वे भी बन्द हो जावेंगी और शायद सब मनुष्य विटामिन-डी के अभावसे मर जायेंगे क्योंकि सूर्यकी इन किरणोंसे ही यह मिलता है। अतः यह स्पष्ट है कि वायुमंडलके इस थोड़ेसे ओपोण पर पृथ्वी पर जीव मात्रकी स्थिति निर्भर है। एक्सप्लोरर-प्रथम तथा एक्सप्लोरर-द्वितीयकी दोनों उड़ानोंमें इस बातकी भी जाँच की गई थी कि भिन्न-भिन्न स्तरोंके नीचे वायुमंडलके कुल ओपोणका कितना भाग रह गया था। यह जाँच उन पराकासनी किरणोंकी जो ओपोणसे शोषित हो जाती हैं उन पराकासनी किरणोंसे जो इससे शोषित नहीं होती तुलना करके की जाती है। एक्सप्लोरर-द्वितीयकी उड़ानमें इसी तरहकी जाँचसे यह बताया गया कि ७२००० फुटके स्तर

तक वायुमंडलके तमाम ओषोणका २० प्रतिशत ओषोण गुब्बारेके नीचे था।

बहुत समयसे वैज्ञानिकोंकी यह जाननेकी इच्छा थी कि ऊपरी भागोंकी हवा पृथ्वी परकी हवासे कुछ भिन्न है या नहीं। इस बातकी जाँचके लिये उन्हें ऊपरी भागोंकी हवा के नमूनोंकी आवश्यकता थी और यह उन्हें इस उड़ानसे प्राप्त हो सके। उन लोगोंका विचार था कि क्योंकि हवा भिन्न-भिन्न गैसोंका और विशेषतः नोपजन तथा ओषजनका मिश्रण है और क्योंकि पवनके चलनेसे यह खूब मिले रहते हैं अतः हवा सब जगह एक सी है परन्तु ऊर्ध्वमंडलके काफी ऊपर जहाँ पवन कम चलती है भिन्न-भिन्न गैस अलग होने लगेंगे और इसलिये नोपजन हलका होनेके कारण ऊपर अनुपाततः से अधिक मिलेगा। इन नमूनोंकी जाँचसे मालूम हुआ कि यद्यपि ७०००० फुट ऊपरकी हवा में पृथ्वी परकी हवासे नोपजन अनुपाततः अधिक है परन्तु यह उतना अधिक नहीं है जितना कि कुछ वैज्ञानिकोंका विचार था।

पहले वैज्ञानिकोंको इस बातका बिल्कुल भी ज्ञान नहीं था कि बहुत छोटे-छोटे कीटाणु जो सिर्फ सूक्ष्मदर्शकसे ही देखे जा सकते हैं ऊर्ध्वमंडलमें जीवित रह सकते हैं या नहीं और यदि वे वहाँ रह सकते हैं तो वे अवश्य पवनके कारण बड़ी दूर-दूर तक चले जाते होंगे। इस विषयमें

कई वर्ष पूर्व स्वीडनके एक वैज्ञानिक स्वान्ते अरहीनियस (Svante Arrhenius) ने अपना विचार इस तरहसे प्रगट किया था कि बहुत छोटे-छोटे कीटाणु पृथ्वीके वायुमंडलको छोड़कर आकाशमें लगातार उड़े चले जा रहे है। यह असंख्य मील इसी तरह उड़ते चले जावेंगे अन्त में किसी दूसरे ग्रहों पर उतर कर यदि वहाँ जीवन संभव हो तो वहाँ उसे आरम्भ करेंगे। उनका यह भी कहना है कि आरम्भमें शायद पृथ्वी पर भी इसी तरहसे जीवधारी उत्पन्न हुए हों।

एक्सप्लोररकी उड़ानमें इस तरहके कीटाणुओंके साथ तीन प्रकारके प्रयोग किये गये जिनके उद्देश्य निम्नलिखित हैं :—

(१) यह देखना कि यह कीटाणु ऊर्ध्वमंडलके उन भागोंमें जीवित रह सकते हैं या नहीं जहाँ पर मनुष्य-का जीवित रहना असंभव है।

(२) इसी तरहके कीटाणु यदि ऊर्ध्वमंडलमें रहते हों तो उन्हें इकट्ठा करना।

(३) यह देखना कि गोण्डोलाके अन्दर ऊर्ध्वमंडल तक ले जाई गई फल-मक्खियोंके बच्चोंमें विश्वकिरणोंके प्रभाव-से कुछ परिवर्तन होता है या नहीं।

पहले प्रयोगमें छोटी-छोटी क्वार्ट्ज़की नलियोंमें सात प्रकारके कीटाणु गोण्डोलाके बाहर रख कर ले जाये गये थे।

यद्यपि बहुत तेज़ सूर्यकी रोशनी, बहुत ज्यादा ठंड, ओपोण तथा बहुत कम वायुदबावमें ये कई घंटे रक्खे रहे परन्तु फिर भी सात तरहके कीटाणुओंमें से पाँच तरहके सुरक्षित वापस लौट आये और ये सब दूसरे कीटाणुओंकी तरह जो ऊपर नहीं लेजाये गये थे काम कर रहे हैं।

दूसरे प्रयोगसे ज्ञात हुआ कि ३६००० फुट ऊपरकी सतहसे दस प्रकारके कीटाणु इकट्ठे किये जा सके। वहाँ पर यह कीटाणु बहुत संख्यामें हैं और वे लगभग उतने ही बड़े तथा भारी हैं जितने कि दूसरे कीटाणु होते हैं। इन कीटाणुओंकी उपस्थितिसे यह बात स्पष्ट समझमें आ जाती है कि संसारके भिन्न-भिन्न भागोंमें एक ही प्रकारके पेड़ या पौधे वनस्पति क्यों मिलती हैं।

तीसरा प्रयोग अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। पहले तो लोगोंको विश्वास था कि जो मक्खियाँ ऊर्ध्वमंडलमें ले जाई गई थीं उनमेंसे कोई भी नहीं बचीं परन्तु उनके अंडे आदि बच गये और उनसे निकले हुए बच्चों पर अब खोज हो रही है।

एक्सप्लोरर-द्वितीयमें ऊपरी वायुमंडलकी विद्युत्-चालकता नापनेके लिये भी यंत्र ले जाये गये थे। यह वाशिंगटन कार्नेगी इन्स्टीट्यूटकी पार्थिव चुम्बक शाला (Department of Terrestrial Magnetism) के ओ० एच० गिश और के० शरमनका बनाया हुआ था।

इसमें एक आधे इञ्च व्यासकी एक फुट लम्बी धातुकी छड़ एक चिमनी जैसे बक्सेके अक्षमें लगी थी हुई थी जो, गोण्डोलाके बाहर लगा हुआ था। यह छड़ अपने आलम्बन पर यंत्रसे पृथग्न्यस्त (insulated) थी। इसको एक विद्युत्-आवेश दिया जाता था और एक बारीक तारसे गोण्डोलामें रक्खे हुये आत्म-लेखक यंत्रसे जोड़ दिया जाता था जिससे चिमनीके अन्दरकी हवाकी विद्युत्-चालकता आपसे आप अनुलेखित हो जाती थी। विद्युत्-चालकता उस समय पर निर्भर थी जिसमें यह छड़ अपने आवेशका कुछ नियत भाग इसके चारों तरफकी हवाको दे देवे। चिमनीके ऊपर तथा नीचेका भाग खुला हुआ था और इसमें हवाको खूब घुमानेके लिये एक पंखा लगा हुआ था। सबसे अधिक विद्युत्-चालकता ६१००० फुट वाली सतह पर थी। यहाँ पर यह समुद्रके किनारेकी सतह परसे ८१ गुणा अधिक थी। इस उड़ानकी सबसे अधिक ऊँचाई पर यह समुद्रके किनारेकी सतहसे सिर्फ ५० गुणी ही अधिक थी। वैज्ञानिकोंका विचार है कि इस तरहसे विद्युत्-चालकताके बढ़नेका कारण विश्व-किरणें ही हैं।

इस उड़ानमें सबसे अच्छी खोज विश्वकिरणों पर हुई। गुब्बारेके बहुत बड़े होने तथा इसकी ऊपर उठानेकी शक्ति काफी अधिक होनेसे इस समय विश्वकिरणोंकी खोजके लिये बड़े-बड़े कई यंत्र ले जाये गये। यह भिन्न-भिन्न कोणों

पर विश्वकिरणोंको नापते थे। इनमेंसे एक तो बिल्कुल क्षैतिज लगाया गया था, दूसरा क्षितिजसे १० अंश ऊपर, तीसरा क्षितिजसे ३० अंश ऊपर, चौथा क्षितिजसे ६० अंश ऊपर तथा पाँचवाँ बिल्कुल ऊपरकी ओर लगाया गया था। क्योंकि तमाम गोण्डोला एक पंखेके कारण घूमता था अतः यह सब यंत्र भी क्षितिजके चारों तरफ घूम जाते थे तथा सब तरफसे आने वाली विश्व-किरणोंको अंकित करते थे। जब यन्त्र बिल्कुल सीधा लगा हुआ था उससे मालूम हुआ कि विश्व किरणें ५७००० फुट सतह तक लगातार बढ़ती रहीं परन्तु इसके बाद उड़ानकी सबसे अधिक ऊँचाई ७२३९५ फुट तक यह घटती रहीं। इस उड़ानमें विश्व-किरणें ४०००० फुटकी सतह पर समुद्रकी सतहसे ४'०१ गुणी, ५३००० फुट पर ५१'२ गुणी, और ५७००० फुट पर ५५ गुणी थीं परन्तु ७२३९५ फुट पर यह घट कर फिर ४२ गुणी रह गई थीं। विश्वकिरणोंके इस तरह व्यवहार करनेका कारण डा० स्वान यह बताते हैं कि जो किरणें हम अनुलेख करते हैं वे आकाशसे सीधी आई हुई किरणें नहीं हैं बल्कि इनमें अधिकतर वे किरणें हैं जो सीधी आई किरणोंके हवाके परमाणुओंसे टकरानेसे निकली हैं। ऐसी किरणोंको द्वैतीयिक किरणें (secondary rays) कहते हैं। जैसे-जैसे हम ऊपर आते हैं यह द्वैतीयिक किरणें कम होती

जाती हैं क्योंकि वैसे-वैसे हवा भी कमती होती जाती है जिनसे यह उत्पन्न होती हैं। पृथ्वीकी सतह पर क्षितिजकी तरफसे आने वाली किरणें बिल्कुल सीधी ऊपरसे आने वाली किरणोंके मुकाबलेमें बहुत कम होती हैं क्योंकि जो किरणें क्षितिजकी तरफसे आती हैं उन्हें वायुमंडलके बहुत बड़े भागमें होकर गुजरना पड़ता है। वैज्ञानिकोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ४०००० फुट वाली सतह पर क्षितिजकी तरफसे आने वाली किरणें सीधी आने वाली किरणोंकी २० प्रतिशत थीं। इसकी पूरी जाँच करने पर वे इस परिणाम पर पहुँचे कि जो किरणें क्षैतिज रक्खे हुए यन्त्रमें घुसती हैं वे अपने तमाम पथमें उसी तरफसे नहीं चलती हैं अपितु वे पृथ्वीके चुम्बकत्वके कारण मुड़के आई हैं। एक्सप्लोरर-द्वितीयकी उड़ानमें यह मालूम हुआ कि ७२३९५ फुट वाली सतह पर क्षितिजकी तरफसे तथा सीधी ऊपरसे आने वाली किरणें बराबर थीं।

विश्व-किरणोंकी खोजके लिये इस उड़ानमें एक नया यन्त्र और ले जाया गया था जिसका नाम स्टार्स चैम्बर था। यह एक हाइड्रोमेटिलका बना हुआ २० इंच व्यासका एक गोला था और इसमें २५० पाउंड प्रति वर्ग इंचके दबाव पर नाइट्रोजन भरा हुआ था। इस पर ५।८ इंच मोटी सीसेकी पट्टी रक्खी हुई थी जिसके परमाणुओंसे विश्व-किरणों के टकराने पर जो सामर्थ्य निकलती थी वह इस यन्त्रकी

सहयातासे लेख होती थी। इन लेखोंकी जाँचसे यह ज्ञात हुआ कि जैसे-जैसे गुब्बारा ऊपर उठता गया सीसेके परमाणुओंसे निकली हुई सामर्थ्य उसी तरहसे बढ़ती गई जैसे कि वैज्ञानिकोंको आशा थी। विश्व-किरणोंके विषयमें जाननेके लिये एक तीसरी विधि और काममें लाई गई थी जो बहुत ही सरल थी। कुछ फोटो लेनेकी प्लेटोंको ऐसे काले कागज़में बाँधा गया जिसमेंसे प्रकाश अन्दर नहीं जा सकता था और उन्हें ऐसे दो बक्सोंमें बन्द करके गोण्डोलाके बाहर रख दिया गया जिन पर एक विशेषतः बनाया हुआ घोल पोत दिया गया था। इस सबसे यह देखना था कि विश्व-किरणें इस घोलके अन्दर जाकर प्लेटों पर निशान बनाती हैं या नहीं। जब इन प्लेटोंको धोया गया तो पहले तो इन पर कुछ भी दिखाई नहीं दिया परन्तु बादमें इनको एक अतिवर्धक सूक्ष्मदर्शकसे देखने पर कुछ लम्बे पथ दिखाई दिये। इन पथोंकी जाँच करके डा० विल्किनने बताया कि यदि यह पथ गुल्फाकणोंसे बनाये हुए होते तो उनकी सामर्थ्य लगभग १० करोड़ ऋणाणु-वोल्टके बराबर होती।

एक्सप्लोररद्वितीयकी उड़ानमें जो-जो निर्दिष्ट संग्रह हुआ उसका विश्लेषण अभी तक पूरा नहीं हुआ है परन्तु इसमें तो कोई संदेह ही नहीं है कि इस उड़ानने हमारे ज्ञानमें काफी वृद्धि की है। पाठकोंके सुभीतेके लिये हम उन

परिणामोंको नीचे लिखते हैं जिन पर वैज्ञानिक इस उड़ानके भिन्न-भिन्न यन्त्रोंके लेखोंकी जाँच करके पहुँचे हैं।

(१) ठीक सीधी ऊपरसे आने वाली विश्वकिरणें (उनके व्यापन प्रभावके आधारपर बने हुए यन्त्रोंसे नापे जाने पर) एक विशेष सतह तक तो (जो एक्सप्लोरर-द्वितीयकी उड़ानमें ५७००० फुट थी) बढ़ती हुई मालूम होती हैं परन्तु उसके ऊपर यह घटनी आरम्भ हो जाती हैं।

(२) ७२३९५ फुटकी ऊँचाई पर क्षितिजकी तरफसे आने वाली विश्वकिरणें उतनी ही होती हैं जितनी कि सीधे ऊपरसे आती हैं।

(३) विश्व-किरणोंसे परमाणुओंके खंडन होने पर जो सामर्थ्य निकलती है उसके लेख ७२३९५ फुट ऊपर तक पहली बार लिये गये।

(४) एल्फा-कणोंकी तरहकी विश्वकिरणोंके (जिनकी महान् सामर्थ्य १००;०००,००० ऋणाणु वोल्ट थी) पथ फोटो की प्लेट पर पहली बार लिये गये।

(५) प्रयोगशालाओंमें जितने बड़े वर्णपट लेखक हैं उतने बड़े वर्णलेखकोंसे ७२३९५ फुटकी ऊँचाई पर सूर्य तथा आकाशके वर्णपट पहली बार लिये गये।

(६) ऊर्ध्वमंडलसे ऐसे फोटो पहली बार लिये गये जिनसे अधोमंडलके ऊपरी भागकी वक्रता दिखाई देती थी तथा जिससे पृथ्वीकी वक्रता भी स्पष्ट दिखाई देती थी।

(७) समुद्रके धरातलसे ऊपर ३०,००० फुट और ७२३९५ फुटके बीचकी हवाकी विद्युत्-चालकता पहली बार मालूमकी गई।

(८) ७०००० फुटके ऊपरकी हवाके नमूने पहली बार लाये गये जिनकी जाँचसे मालूम हुआ कि वहाँ पर नोपजन तथा ओपजन लगभग उसी अनुपातमें हैं जैसा पृथ्वीपर।

(९) पहली बार यह ज्ञात हुआ कि जीवित कीटाणु आकाशमें ३६००० फुट ऊपर तैरते रहते हैं।

(१०) पहली बार यह बताया गया कि कीटाणु ऊर्ध्वमंडलमें ७२३९५ फुट तकसे कम चार घंटे तक रह सकते हैं।

(११) बहुत ऊँचाई पर ऊर्ध्वमंडलमेंसे आकाशके प्राकृतिक रङ्गोंमें पहली बार फोटो लिये गये।

(१२) ७२३९५ फुट ऊपरके आकाशकी चमकके लेख पहली बार लिये गये जिनसे ज्ञात हुआ है कि वहाँ पर आकाश पृथ्वीसे दिखाई देने वाली चमकका १० प्रतिशत ही चमकीला प्रतीत होता है।

(१३) ७२३९५ फुट पर सूर्यकी चमकके लेख पहली बार लिये गये जिससे ज्ञात हुआ कि वहाँ यह बीस प्रतिशत अधिक चमकीला प्रतीत होता है।

(१४) सबसे अधिक ऊँचाईसे (७२३९५ फुट ऊपर) पृथ्वीके ठीक ऊपरसे फोटो लिये गये।

(१५) पृथ्वीके १३.७१ मील ऊपरसे पहली बार रेडियो संकेत भेजे गये।

गुब्बारे और कितने ऊँचे जा सकते हैं?

संसारके पहलेके सर्व-रिकार्डोंको मातकर देने वाले एक्सप्लोरर द्वितीयकी ऊर्ध्वमंडलकी इस उड़ानके विषयमें पढ़कर और पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न उठता होगा कि मनुष्य ऐसे गुब्बारोंमें बैठ कर अधिक-से-अधिक कितने ऊँचे जा सकते हैं। इस बातके विषयमें वैज्ञानिकोंके भिन्न-भिन्न मत हैं। अमरीकाके वैज्ञानिकोंका विचार है कि ऐसी उड़ानों से ७५००० फुटसे ऊपर जानेकी बहुत अधिक संभावना नहीं है और इसके अतिरिक्त एक्सप्लोरर-द्वितीयसे बड़ा गुब्बारा बनाना ही एक बड़ी समस्या है। यद्यपि जैसे-जैसे हम ऊपर जाना चाहेंगे हमें बड़े गुब्बारोंकी आवश्यकता पड़ेगी परन्तु बहुत ऊँचाई तक जानेके लिये सिर्फ बड़ा गुब्बारा ही एक आवश्यक वस्तु नहीं है। इसके अतिरिक्त हमें गोण्डोला, वैज्ञानिक यंत्र तथा उड़ाकोंके सुरक्षित नीचे उतर आनेका भी विचार करना है। उड़ाकोंको सुरक्षित नीचे उतरनेके लिये उन्हें अपने साथ काफी बोझा ले जाना पड़ेगा क्योंकि जनवरी सन् १९२४ ई० की रूसी गुब्बारेकी दुर्घटनासे हमने पहले ही पाठ सीख लिया है। इन सब

बातोंको विचारमें रखते हुए थोड़ी भी अधिक ऊँचाई पर जानेके लिये बहुतसा बोझा ले जाना पड़ेगा। यहाँ तक कि यदि लगभग १४ मीलसे दूनी ऊँचाई तक उड़नेका विचार हो तो २५०० टन बोझ उठा कर ले जाना पड़ेगा। इन सब बातोंको विचारमें रखते हुये अमरीकाके वैज्ञानिकोंका विचार है कि गुब्बारोंकी सहायतासे मनुष्य १५ मीलसे ऊपर नहीं जा सकते हैं।

परन्तु प्रसिद्ध उड़ाके प्रोफेसर अगस्ट पिकार्डका मत इस विषयमें बिल्कुल भिन्न है। उनका कहना है कि मनुष्य सबसे ऊँचे ४०००० मीटर (२४'८५५) ऊपर तक जा सकता है परन्तु इसके लिये एक विशेषतः बने हुए गुब्बारे की आवश्यकता होगी जिसमें बहुतसे नये तथा भिन्न-भिन्न यंत्र लगाये जावेंगे। इन्होंने मई सन् १९३७ ई० को ब्रूसल के निकट जूलिचसे फिरसे एक उड़ान उड़नेका प्रयत्न किया था परन्तु अभाग्यवश इनके गुब्बारेमें जिसमें गरम हवा भरी हुई थी आग लग गई, और यह जल कर भस्म हो गया। अभी तो यह सिर्फ १८ मील ऊपर तक ही जानेको सोच रहे थे और इनको पूर्ण विश्वास है कि वहाँ पर ये विश्वकिरणोंकी ही खोज नहीं करेंगे बल्कि और भी बहुत सी ऐसी बातोंकी जाँच करेंगे जिनके विषयमें मनुष्य अभी तक कुछ नहीं जानते हैं। इस समय इनका गुब्बारा ३२८ फुट लम्बा और ९६ फुट चौड़ा बना था और इसके लिये

एक विशेषतया बनाया गया रेशम कामर्मे लाया गया था। अब भी इनका विचार एक उड़ान उड़नेका है। यह पोलैंड के वारसा या जूरिचसे उड़नेकी सोच रहे थे। इसका कारण यह था कि एक तो पोलैण्डमें अच्छा रेशम बनता है दूसरे इन्हें वहाँकी गवर्नमेंटसे आर्थिक सहायता मिलनेकी आशा थी। परन्तु इस युद्धके छिड़ जानेसे तथा पोलैण्डका अस्तित्व मिट जानेसे पता नहीं उनकी आशायें पूरी होंगी या नहीं।

यद्यपि अमरीकाके वैज्ञानिक १५ मील सबसे ऊपर जानेकी सीमा बताते हैं और प्रोफेसर पिकार्ड लगभग १९ मील परन्तु वास्तवमें इन दोनों मतोंमें कोई अधिक अन्तर नहीं है। एक्सप्लोरर द्वितीयको बनाने वाले वैज्ञानिक इस बातको मानते हैं कि रबर-वेष्टित मलमलके स्थान पर रबर-वेष्टित रेशमके काममें लाने पर गुब्बारेका तौल ४० प्रतिशत घट जायेगा अतः एक्सप्लोरर-द्वितीयसे ज़रा बड़ा गुब्बारा ही १९ मील ऊपर पहुँचनेमें सफल होगा परन्तु उनका कहना है कि रेशम ऐसी उड़ानोंके लिए सुरक्षित नहीं है और यदि एक हलके तथा मज़बूत कपड़ेकी खोज हो सके तो प्रोफेसर पिकार्डकी कही हुई ऊँचाई तक जाना सम्भव हो सकता है। चित्र ९ में ऊर्ध्वमंडलमें जो-जो उड़ानें हुई हैं तथा जिसमें सबसे अधिक ऊँचाई तक पहुँचे हैं, दिखलाई गई हैं।

ऊर्ध्वमंडलकी खोज आदमी बैठकर जाने वाले गुब्बारों तथा उन भिन्न-भिन्न यंत्रोंकी सहायतासे हो सकती है जिनका वर्णन हम पिछले अध्यायोंमें लिख आये हैं परन्तु इससे और ऊपरके भागोंकी खोजके लिये यह सब विधियाँ निष्फल हो जाती हैं। इन भागोंकी खोजके लिए तो अब सिर्फ एक ही विधि रह जाती है और वह है रेडियो-किरणें। अगले अध्यायमें हम वायुमंडलके इन भागों और विशेषतः आयन-मंडल (यवन-मंडल) के विषयमें विस्तारसे लिखेंगे।

अध्याय ४

आयन-मंडल

सन् १९०१में जब कि बहुतसे वैज्ञानिक तथा गणितज्ञ यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा कर रहे थे कि रेडियो किरणें केवल सौ दो सौ मीलसे अधिक दूरी तक नहीं भेजी जासकतीं मारचिज़ मारकोनी ने कार्नवालसे न्यूफाउण्डलैण्ड तक, यानी अटलाण्टिक महासागरके भी उस पार रेडियो संकेत भेज कर तमाम वैज्ञानिक संसारको आश्चर्यमें डाल दिया। मारकोनीकी इस सफलताके बाद बहुतसे वैज्ञानिक उसके इन परिणामोंको जो पहले असम्भवसे प्रतीत होते थे समझानेका प्रयत्न करने लगे। इनमेंसे मुख्य प्रयत्न कम घनत्व वाले माध्यमसे अधिक घनत्व वाले माध्यममें प्रकाश-किरणोंके जानेके कारण आवर्जित होने वाले सिद्धान्तके आधार पर थे। प्रकाशके आवर्जित (refract) होनेके कारण ही एक पतवार जो आधी पानीके अन्दर तथा आधी पानीके बाहर रक्खी हो टेढ़ी सी मालूम होती है तथा लैन्स (lens) को प्रकाश-किरणोंको संग्रह करनेकी शक्ति भी इसी कारण है। वायुमंडलमें भी जैसे जैसे हम ऊपर जाते हैं वायुदबाब कम होता जाता है अतः घनत्वमें भी परिवर्तन

होता जावेगा और इसी लिये रेडियो-तरंगोंका ऊपरी भाग ऊपरके सूक्ष्म वायुमंडलमें कुछ अधिक तेज़ चलेगा। इसका परिणाम यह होगा कि जैसे जैसे रेडियो-तरंगें आगे बढ़ती जायेंगी, इनका तरंगाग्र (wave front) आगेको झुकता जायगा और अन्तमें यह तरंगें पृथ्वीके चारो तरफ मुड़ जावेंगी। परन्तु अब यह प्रश्न भी उठता है कि क्या तरंगें इतनी अधिक मुड़ जावेंगी कि जिससे हमारा काम बन सके। तथा क्या यह मारकोनीके संकेतोंके इतने दूर तक पहुँचनेके कारणको समझानेमें समर्थ होंगी। इस परीक्षा में उपर्युक्त सिद्धान्त असफल होजाता है। ब्रिटेनके प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर ऐमब्रोज़ फ्लेमिंग (Sir Ambrose Fleming) ने सिद्ध किया कि रेडियो-तरंगें जितना हम चाहते हैं उतना तभी मुड़ सकती हैं जब कि पृथ्वीके सम्पूर्ण वायुमंडलमें क्रिप्टन गैस ही भरा हुआ हो। परन्तु ऐसा माननेसे हम जिन जिन परिणामों पर पहुँचेंगे वे तो और भी विचित्र हैं। पहले तो ऐसे वायुमंडलमें सांस लेना और प्राणिमात्रका जीवित रहना ही असम्भव है परन्तु यदि यह संभव मान भी लिया जाये तो बहुत अच्छे दूर-दर्शककी सहायतासे हम पृथ्वीकी परिधि पर कमसे कम आधी दूरी तक देख सकते और आजकल जो जर्मनीकी पश्चिमी सीमा पर लड़ाई होरही है उसे यहां ही बैठे बैठे अच्छी तरहसे देख सकते। इसके अतिरिक्त रेडियोकी छोटीसे छोटी लहर-

लंबाई वाली किरणें भी पृथ्वीके चारो तरफ भेजी जासकती थीं परन्तु हम जानते हैं कि आजकल यह संभव नहीं है।

मारकोनीके प्रयोगोंके परिणामोंकी ठीक ठीक व्याख्या सर्वप्रथम ब्रिटेनके प्रसिद्ध वैज्ञानिक ओलीवर हेवीसाईडने की। इन्होंने यह मत प्रगट किया कि आकाशमें एकसे अधिक ऐसे दर्पण हैं जिनसे रेडियोकिरणें परावर्तित होती हैं और इसी लिये वे पृथ्वीके चारों तरफ जा सकती हैं। ए. ई. केनीली ने भी जो अमरीकाके एक प्रसिद्ध प्रोफेसर थे आकाशमें ऐसे दर्पणकी उपस्थितिका स्वतंत्र रूपसे प्रस्ताव किया। इन्हीं दोनों वैज्ञानिकोंके नाम पर इस दर्पणको जो आयन-मंडलके नीचेके भागमें हैं केनीली-हेवीसाईड-स्तर कहते हैं।

अब यह प्रश्न उठता है कि इन दोनों वैज्ञानिकोंके विचारमें यह दर्पण किस प्रकारके थे तथा आकाशमें ऐसे किस तरहके दर्पण हो सकते हैं जो रेडियो-तरंगोंको परावर्तित करदें। इस बातका ठीक निर्णय करनेके लिये हमें रेडियो किरणोंकी प्रकाश किरणोंसे तुलना करनी चाहिये। यह तो अब अच्छी तरहसे ज्ञात ही है कि रेडियो-किरणें प्रकाश किरणोंसे काफी बड़ी हैं अतः अब यह देखना है कि इतनी बड़ी रेडियो-किरणोंको परावर्तित करने वाला दर्पण साधारण दर्पणसे कितना भिन्न है और इसके लिये जो सबसे पहले जाननेकी इच्छा होती है वह यह है कि यह

कितना ठोस है। प्रकाश किरणोंको परावर्तित करने वाले मामूली दर्पणको देख कर तो हमारा विचार होता है कि रेडियो-किरणोंको परावर्तित करने वाला दर्पण भी एक बड़ी ठोस वस्तु होगी परन्तु साधारण दर्पण भी उतना अधिक ठोस नहीं है जितना हमारा विचार है क्योंकि जिन परमाणुओंसे यह बना हुआ है उनके बीचमें काफी जगह होती हैं। इसी तरहसे जो सतह जल तरंगोंको बहुत अच्छी तरहसे परावर्तित कर सकती है उनमें भी काफी गड्ढे होते हैं। यदि हम एक पानीसे भरे हुए हौज़में अपनी अँगुलीसे छोटी छोटी लहरें पैदा करें तो हम देखेंगे कि यह एक कंघे या लोहेकी जालीसे अच्छी तरह परावर्तित हो जाती हैं, यद्यपि जालीके तारों अथवा कंघेके दांतोंके बीचमें काफी जगह खाली होती है। इन सबसे यह प्रमाणित है कि तरंगोंको परावर्तित करनेके लिये कोई बहुत समरूप सतहकी आवश्यकता नहीं हैं। परन्तु किसी भी तरहकी तरंगोंको एक दर्पणसे परावर्तित होनेके लिये यह एक अत्यन्त आवश्यक बात है कि दर्पणमें जो खाली जगह तथा गड्ढे हों वे इन तरंगोंकी लहर-लंबाईकी तुलनामें काफी छोटे हों। बहुधा ऐसा होता है कि किसी सतहके गड्ढे एक विशेष किरणोंके लिये तो काफी छोटे हों अतः यह उससे परावर्तित होसकें परन्तु दूसरी किरणोंके लिये काफी बड़े हों और उन्हें परावर्तित करना संभव न हो। जैसे कि एक चट्टानसे समुद्रको

लहरें परावर्तित हो सकती हैं तथा शब्द-तरंग इससे टकरा कर गूंज पैदा कर सकती हैं परन्तु प्रकाश-किरणोंको परावर्तित करनेके लिये इसकी सतह बहुत ही खुरदरी है।

अब हमें इसकी पूर्ण आशा है कि रेडियो-तरंगें प्रकाश तरंगोंसे बहुत बड़ी होनेके कारण बहुत कम ठोस वस्तुसे भी परावर्तित हो जायेंगी और यह बात डवेण्ट्रीके बी. बी. सी. स्टेशन से और भी प्रमाणित हो जाती है जहाँ पर रेडियो तरंगोंको एक ही दिशामें भेजनेके लिये तथा दूसरी तरफको जानेसे रोकनेके लिये कोई विशेष वस्तु काममें नहीं लाते बल्कि सिर्फ एक दूसरे एरियल (आकाशी) से जो पहले एरियलसे लगभग २० फुट पीछे रहता है इन्हें परावर्तित कराते हैं और यह एरियल बहुत अच्छे दर्पणका काम देता है। मारकोनी ने भी अति सूक्ष्म रेडियो-किरणोंको परावर्तित करानेके लिये कई लोहेकी छड़ें काममें लायी थीं जो सब इस तरहसे दूर दूर रक्खी हुई थीं कि इन सबको मिल कर एक परवलय बन जाता था।

परन्तु हमें आकाशमें ऐसी धातुओंकी छड़ों तथा एरियलोंके होनेकी आशा नहीं करनी चाहिये जो रेडियो-किरणोंको परावर्तित करदें। हमें आकाशके इस दर्पणकी पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये प्रकाश-किरणोंके परावर्तित होनेकी घटनाकी अच्छी तरहसे जांच करनी चाहिये। हम जानते हैं कि दर्पणमें जो परमाणु होते हैं

वे उसी तरहके बने होतेहैं जैसे हमारा सूर्यमंडल। इनके बीचमें तो सूर्यकी तरह एक धन केन्द्र होता है और इसके चारों तरफ ग्रहोंकी तरह कई ऋणाणु घूमते रहते हैं। और क्योंकि ऋणाणु, जो कि सबसे छोटे विद्युत् कण हैं केन्द्रकी अपेक्षा अधिक जगहमें फैले रहते हैं अतः दर्पण पर गिरने वाली प्रकाश तरंगका प्रभाव पहले इन्हीं पर होता हैं। जो ऋणाणु प्रकाश-किरणोंके पथमें आते हैं वे उन किरणों हीकी तालमें नाचने लगते हैं या यों कहिये कि यह वैसे ही कम्पन करने लगते हैं जैसी प्रकाश-किरणोंकी आवृति होती है। इस प्रकारके कम्पनमें यह एक क्षणके लिये प्रकाश-किरणोंकी शक्ति अपनेमें रक्खे रहते हैं और इसके बाद यह अपनी कुछ शक्ति तो इनके नीचेके ऋणाणुओंको दे देते हैं और बाकी शक्तिकी नई प्रकाश तरङ्ग बन जाती हैं। जब सब ऋणाणु इस प्रकारसे कम्पन कर चुकते हैं तो सबसे निकली हुई नई किरणें मिलकर परावर्तित किरण बनाती हैं और जो शक्ति ये अपने नीचेके ऋणाणुओंको देते हैं उससे आवर्जित किरण बन जाती हैं। अतः हम देखते हैं कि ऋणाणुओं हीके कारण प्रकाश किरणें आवर्जित तथा परावर्तित होती हैं। और क्योंकि रेडियो तथा प्रकाश किरणें एक ही प्रकारकी हैं अतः रेडियो-किरणोंको भी ऋणाणु ही परावर्तित करते होंगे। इसके अतिरिक्त इनके प्रकाश-किरणों से बहुत बड़े होनेके कारण इन्हें परावर्तित करनेके लिये भी

बहुत ही कम ऋणाणुओंकी आवश्यकता होगी।

यह ऋणाणु भिन्न-भिन्न किरणोंके परावर्तनके ही कारण नहीं होते बल्कि विद्युत्-धाराके बहानेमें भी बड़े सहायक होते हैं। एक तार या किसी ठोस विद्युत्चालकमें जब विद्युत्धारा बहती है तब इन ऋणाणुओंकी एक धारा एक परमाणुसे दूसरे परमाणु तक उसी प्रकारसे चलती है जैसे कि एक क़तारमें बहुतसे आदमी खड़े हों और एक पानीकी बालटी एक दूसरेको देते-देते एक छोरसे दूसरे छोर तक पहुँच जावे। परन्तु गैसमें उसके परमाणुओंके एक दूसरे से काफ़ी दूर-दूर होनेके कारण इस प्रकारसे विद्युत् धारा नहीं बह सकती। गैसमें एक परमाणुसे दूसरे परमाणु तक विद्युत् धारा भेजनेके लिये, इन परमाणुओंको अपने ऋणाणु भेजने पड़ते हैं अतः ऋणाणु इनसे अलग हो जाते हैं अर्थात् गैस यापित हो जाती है। अब गैसमें कोरे परमाणु ही नहीं रहते बल्कि स्वतन्त्र-ऋणाणु भी। यह स्वतन्त्र ऋणाणु विद्युत्-धाराके बहानेमेंही सहायक नहीं होते बल्कि यह जो कोई रेडियो किरणें इधरसे जाती हैं उसकी ताल पर नाचने भी लगते हैं और उसे आवर्तित तथा परावर्तित करनेमें सफल होते हैं। अतः अब हम इस निर्णय पर पहुंचे कि इसी प्रकारके बहुतसे ऋणाणु मिलकर रेडियो-किरणोंके लिये दर्पणका काम कर सकते हैं। अब यह प्रश्न उठता है कि यदि हम यह मान भी लें कि किसी कारणसे

ऊपरी वायुमंडलमें हवा यापित हो जाती है तो क्या वहाँ पर काफी ऋणाणु होंगे, जिनसे रेडियो-किरणें परावर्तित हो सकें। हम जानते हैं कि ऊपरी वायुमंडलमें जहाँ हमें रेडियो-दर्पणके होनेकी आशा है बहुत हलकी हवा है। यहाँ हवाके काफ़ी सूक्ष्म होनेसे इसके परमाणु ठोस वस्तुकी अपेक्षा काफ़ी दूर-दूर होंगे। जब यह परमाणु यापित होते हैं तो प्रत्येक परमाणुमेंसे केवल एक ही ऋणाणु निकलता है जिससे कि हमारा रेडियो-दर्पण बनता है। यहाँ पर साधारण दर्पणकी तरह जहाँ पर परमाणुके सब ऋणाणु प्रकाश किरणोंको परावर्तित करनेमें सहायता देते हैं, नहीं होता। इसके अतिरिक्त ऊपरी हवाके सब परमाणुओंमेंसे काफ़ी कम परमाणु यापित होते हैं। अतः इन सब बातों-को विचारमें रखते हुए हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि ऊपरी वायुमंडलमें एक ठोस वस्तुकी तुलनामें ऋणाणु बहुत ही कम होंगे। परन्तु रेडियो-किरणोंके प्रकाश-किरणोंसे लगभग दस करोड़ गुणा बड़े होनेसे इनको परावर्तित करने-के लिये साधारण दर्पणकी ठोस सतहके ऋणाणुओंके घनत्व से दस करोड़ गुणा कम घनत्वकी ही आवश्यकता होगी। अतः ऊपरी वायुमंडलमें काफ़ी कम ऋणाणु होने पर भी ये रेडियो किरणोंको परावर्तित करनेके लिये पर्याप्त होंगे।

अब यह पूछा जा सकता है कि ऐसा यापितस्तर आकाशमें बनता ही क्यों है। एक गैस कई प्रकारसे यापित

हो सकती है। एक तो इसके अन्दरसे विद्युत् चिनगारी चलानेसे, दूसरे इसे गरम करनेसे तथा तीसरे ऐसी लघु-किरणोंकी सहायतासे जैसी कि रेडियम आदिसे निकलती हैं। हम जानते हैं कि सूर्यसे भी पराकासनी किरणें निकलती हैं जो काफ़ी लघु हैं। यह काफ़ी तेज़ होती हैं और विशेषतः ऊपरी वायुमंडलमें तो यह और भी तेज़ होती हैं क्योंकि इन्हें वायुमंडलके नीचेकी घनी सतहोंमेंसे होकर नहीं आना पड़ता अतः यह वहाँकी हवाको यापित करनेमें समर्थ होती हैं और इसलिये आकाशमें यापित स्तर बन जाता है।

वास्तवमें ऊपरी वायुमंडलमें यापित स्तरोंके होनेका विचार पहले भी बहुतसे वैज्ञानिकोंने किया था जिनमेंसे सर्व प्रथम बेलफोर स्टूवार्ट थे। इन्होंने बतलाया कि पृथ्वीके चुम्बकत्वमें जो परिवर्तन होते हैं उन्हें ठीक-ठीक समझानेके लिये पृथ्वीके वायुमंडलमें काफ़ी ऊँचाई पर एक विद्युत्-चालक स्तरके होनेकी आवश्यकता है। इस पर कुछ लोगों ने यह भी बतलाया कि ऐसे स्तरकी सहायतासे सुमेरु ज्योतियों तथा कुमेरु ज्योतियोंको भी कुछ-कुछ समझाया जा सकता है। परन्तु पृथ्वीका चुम्बकत्व तथा सुमेरु और कुमेरु ज्योतियाँ आदि इतने अधिक महत्त्वपूर्ण विषय नहीं थे अतः वैज्ञानिकोंने इन विद्युत् चालक स्तरोंकी तरफ कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। यह तो जब केनली तथा हेवी-

साईडने बतलाया कि यह स्तर रेडियो-किरणोंको दूर-दूर तक भेजनेमें भी सहायक होगा तब कहीं वैज्ञानिकोंने इसकी तरफ इतना ध्यान देना आरम्भ किया। परन्तु फिर भी कई वर्षों तक इन स्तरोंकी उपस्थितिका कोई प्रयोगिक प्रमाण न था। सन् १९२४ ई० में अर्थात् केनली तथा हेवीसाईडके इन स्तरोंके वर्तमान होनेके प्रस्तावके २२ वर्ष बाद प्रोफेसर ई० वी० ऐपिलटनने जो उस समय कैवेण्डिश प्रयोगशालामें अनुसन्धान करते थे इस बातको प्रयोगों द्वारा प्रमाणित कर दिया कि वास्तवमें ऊपरी वायुमंडलमें एक रेडियो-दर्पण है। इन्होंने यह कैसे प्रमाणित किया इसको समझनेके लिये हमें जल-तरंगोंकी ओर ध्यान देना चाहिये। हम जानते हैं कि जब दो जलतरगें मिलती हैं तो वे व्यतिकरण करती हैं अर्थात् जब इन दोनोंके तरंग-शीर्ष मिलते हैं तो इनका योग हो जाता है तथा जब एकका तरंगशीर्ष दूसरेके पादसे मिलता है तो इसके विपरीत होता है। यही बात प्रकाश किरणोंके भी विषयमें कही जा सकती है।

प्रोफेसर ऐपिलटनने यह सिद्धान्त रेडियो-तरंगोंके साथ भी लगानेका विचार किया। उन्होंने सोचा कि यदि हमें केनली हेवीसाईड स्तरकी उपस्थिति मान लें तो किसी प्रेषकसे भेजे हुए संकेत हमारे पास दो रास्तोंसे आयेंगे। एक तो पृथ्वीकी सतहके बराबर-बराबर चलकर और दूसरे

ऊपर जाकर तथा इस दर्पणसे परावर्तित होकर। जो तरंग ऊपरी दर्पणसे परावर्तित होकर आयेगी उसे पृथ्वीके बराबर-बराबर आने वाली तरंगके समक्ष अधिक दूर तक चलना होगा। और क्योंकि रेडियो तरंग उसी गतिसे चलती हैं जिससे कि प्रकाश किरणें अतः उन्होंने सोचा कि इन दोनों तरफसे आई हुई तरंगोंके समयांतरको ज्ञात करना तो कठिन होगा परन्तु इन दोनोंमें जो व्यतिकरण होगा उसे अच्छी तरहसे देखा जा सकता है। इन्होंने व्यतिकरणके सिद्धान्तको इस दर्पणकी उपस्थिति तथा इसकी ऊँचाई बतलानेमें किस प्रकारसे काममें लिया वह निम्नलिखित उदाहरणसे बड़ी अच्छी तरह समझा जा सकता है। मानलो कि जिन दो रास्तोंसे प्रेपकसे संकेत ग्राहक तक आ रहे हैं उनमेंसे एककी दूरी ३०० मील तथा दूसरेकी २०० मील है अर्थात् इन दोनों रास्तोंकी लम्बाईमें १०० मीलका अन्तर है। अब हम २०० मील वाले सीधे रास्तेके प्रति ध्यान दें तो देखेंगे कि प्रेपक और ग्राहकके बीच भागमें तरंगके शीर्पके बाद पाद तथा पादके बाद शीर्ष, इसी प्रकारका एक तांता लगा हुआ है। और यदि हम यह भी मानलें कि प्रेपकके संकेतोंकी लहर-लम्बाई ऐसी है कि प्रेपकसे ग्राहकके बीचकी इस दूरीमें पूरी लहर-लम्बाई आती हैं तो जिस समय प्रेपक एक तरंग शीर्ष भेज रहा होगा उस समय ग्राहक पर भी दूसरा तरंग शीर्ष

ही पहुँचा रहेगा तथा प्रेषक यदि एक तरङ्ग-पाद भेज रहा होगा तो ग्राहक पर भी तरंग-पाद ही पहुँचा रहेगा क्योंकि हम जानते हैं कि लहर-लम्बाई उस दूरीको कहते हैं जो एक तरंग शीर्ष और उससे आगे वाले तरंग-शीर्षके बीचमें हो या जो एक तरंग-पाद और उससे आगे वाले तरंग-पादके बीचमें हो।

अब हमें ऊपरसे होकर आने वाली अर्थात् ३०८ मील वाले रास्तेसे आने वाली तरंग पर ध्यान देना चाहिये। यह तो हमने देख ही लिया है कि प्रेषकसे यदि एक तरङ्ग-शीर्ष निकल रहा है तो उससे २०० मीलकी दूरी पर भी कोई तरङ्ग-शीर्ष ही होगा। अब यह देखना है कि ३०० मीलकी दूरी पर इस समय एक तरङ्ग-शीर्ष पहुँचेगा या तरंग-पाद और यह इस बात पर निर्भर है कि इस पथमें जो १०० मील और अधिक हैं वे पूरे-पूरे लहर-लम्बाइयोंमें विभाजित किये जा सकते हैं या नहीं। यदि ऐसा हो सकता है तो दोनों पथोंसे आने वाली तरंगोंका एक दूसरेसे योग हो जावेगा। परन्तु यदि ऐसा न हो सका और दूसरे पथकी दूरी आधी लहर-लम्बाई और अधिक हो तो इस ऊपर वाले पथसे आने वाली तरङ्गका ग्राहक पाद होगा और इसका प्रभाव सीधे आने वाली तरङ्गके शीर्षके विपरीत होगा। इस अधिक १०० मीलकी दूरीका पूरा-पूरा विभाजित होना या न होना इस बात पर निर्भर है कि

सीधे रास्तेकी २०० मीलकी दूरीमें सम लहर-लम्बाई हैं या विषम। यदि वहाँ पर सम लहर-लम्बाई है तो जब हम इस संख्याको बड़े रास्तेकी १०० मील अधिक दूरीमें आनेवाली लहर-लम्बाईकी संख्या ज्ञात करनेके लिए दो से विभाजित करेंगे तो फिर भी हमें पूरी संख्या मिलेगी। अतः ग्राहक पर दोनों रास्तोंसे शीर्ष ही पहुँचेंगे, अथवा पाद ही। परन्तु यदि सीधे रास्तेमें विषम लहर-लम्बाई आती है तो जब हम इसे विभाजित करेंगे तो एक आधी लहर-लम्बाई भी आवेगी अतः ग्राहक पर दोनों तरंगें एक दूसरेको नष्ट कर देंगी। इस बातको और भी अच्छी तरह समझनेके लिये हम एक उदाहरण लेंगे। यदि हम यह मानें कि हमारी लहर लम्बाई १ मील है तो २०० मीलके सीधे रास्तेमें २०० लहरें होंगी तथा ऊपर वाले रास्तेमें ३००। अतः दोनों तरङ्गोंका आपसमें योग हो जावेगा। यदि हम यह विचार करें कि हमारी लहर-लम्बाई ज़रासी बड़ी है जिससे कि सीधे रास्तेमें १९९ लहर-लम्बाइयाँ आने लगें। इसका अर्थ यह है कि हमारी लहर-लम्बाई लगभग १·००५ मील है तो ऊपर आने वाले रास्तेमें १९९ की डेढ़ी अर्थात् २९८½ तरंगें होंगी अतः ग्राहक पर दोनों तरंगें कट जावेंगी। यदि हम अपनी लहर-लम्बाईको ·९९५ मील कर दें तो दोनों तरंगें आपसमें कट जावेंगी क्योंकि इस समय ऊपर वाले रास्तेमें ३०१½ तरंगें आवेंगी तथा नीचे

वाले रास्तेमें २०१ । इसके अतिरिक्त यदि हम अपनी लहर-लम्बाईको ·९९० या १·०१० मील कर दें तो हम देखेंगे कि ग्राहक पर अब दोनों किरणें युक्त होने लगीं । हम देखते हैं कि १·०१० मील लहर-लम्बाई वाली तरङ्ग ग्राहकपर आकर युक्त हो जाती है, १·००५ मील लहर लम्बाई वाली कट जाती है । एक मील लहर-लम्बाई वाली युक्त हो जाती है । ०·९९५ मील वाली कट जाती है और ०·९९० मील वाली फिर युक्त हो जाती है । अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यदि हम अपने संकेतोंकी लहर-लम्बाईका संलग्न परिवर्तन करें तो हमें ग्राहकमें संकेत एकान्तरमें अच्छे तथा बुरे सुनाई देंगे। अब यदि प्रयोग द्वारा हम देखें कि वास्तवमें हमें इसी प्रकारसे संकेत एकान्तर हो अच्छे तथा बुरे मिलते हैं तो इसमें कोई संदेह ही नहीं रह जाता कि हमारे पास तरंगें दो पथोंसे आ रही हैं और इनमेंसे एक तरङ्ग ऊपरके रेडियो दर्पणसे परावर्तित होकर आ रही है । प्रोफेसर एपिलटनने केनली हेवीसाइड दर्पण-की उपस्थिति प्रमाणित करनेके लिये यही विधि काममें लाई । उन्होंने अपने ग्राहकको ऑक्सफोर्डमें रक्खा तथा बी० बी० सी० के इन्जीनियरोंने वहाँके नित्यके कार्य-क्रम समाप्त हो जाने पर अपने प्रेषककी लहर-लंबाई १० मीटर इधर-उधर बदलनेकी जुम्मेवारी ली । जैसी कि आशा थी प्रेषक लहर-लम्बाई बदलने पर प्रोफेसर एपिल्-

उनको संकेत एकान्तरमें अच्छे तथा बुरे सुनाई दिये, जिससे प्रमाणित हो गया कि ऊपरी वायुमंडलमें एक यापित स्तर है जो रेडियो-दर्पणका काम करता है। एक वार अच्छा सुनाई देने और दूसरी वार अच्छा सुनाई देनेके समयमें जो लहर-लम्बाईमें परिवर्तन हुआ उसे ज्ञात करके उन्होंने जिन दोनों पथोंसे रेडियो-किरणें आ रही थीं उनकी लम्बाई के अन्तरको मालूम कर लिया और इसकी सहायतासे, रेडियो प्रेषक और ग्राहककी दूरी जानते हुए रेडियो दर्पण-

चित्र १० रेडियो दर्पण
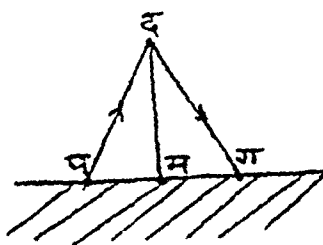
की ऊँचाई यहाँ आसानीसे ज्ञात कर ली। चित्र १०में 'प' पर प्रेषक है तथा 'ग' पर ग्राहक। रेडियो-तरंगोंका पथ एक तो पग है और दूसरा प द ग। प गकी दूरी ज्ञात ही है और प्रयोग द्वारा हमने यह मालूम ही कर लिया है कि दोनों पथोंमें क्या अन्तर है अतः अब हमें 'प द ग' की दूरी ज्ञात हो जायगी और क्योंकि 'द ग' 'प द ग' का आधा है तथा 'म ग' 'प ग' का आधा है अतः हमें समकोणिक

त्रिभुज द म ग की दो भुजायें द ग तथा म ग तो ज्ञात हो गईं इससे हम इसकी तीसरी भुजा 'दम' बड़ी आसानी-से निकाल सकते हैं और यह रेडियो दर्पणकी ऊँचाई है ।

प्रोफेसर ऐपिलटनका रेडियो-दर्पणकी उपस्थिति प्रमाणित करना बहुत महत्वपूर्ण था । परन्तु अभी इस विषयमें बहुतसे प्रश्न हल करने थे । उन्होंने बतलाया कि रेडियो-दर्पण एक विशेष समय तथा स्थान पर उपस्थित है और यह विशेष लहर-लंबाई वाली किरणोंको परावर्तित करता है । परन्तु अभी यह बताना था कि यह हमेशा एक ही ऊँचाई पर रहता है, भिन्न-भिन्न लहर-लंबाई वाली किरणोंको एक ही प्रकारसे परावर्तित करता है या नहीं तथा इसमें और क्या-क्या विशेषतायें हैं । इस तरहके भिन्न-भिन्न प्रश्नोंको हल करनेके लिये इस रेडियो-दर्पणकी जाँच भिन्न-भिन्न स्थानों पर तथा दिन-रात करनेकी आवश्यकता थी और इसके लिये बहुतसे काम करने वाले वैज्ञानिक, एक निश्चित कार्य-क्रम तथा एक विशेष प्रकारके प्रेषककी आवश्यकता थी । इंगलैण्डमें इन सब बातोंकी पूर्ति रेडियो-अनुसन्धान-समिति (रेडियो रिसर्च बोर्ड) ने की जो एक गवर्नमेंट संस्था है और जिसकी स्थापना सन् १९२० में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान विभागकी अध्यक्षतामें-की गई । इस समितिका उद्देश्य भिन्न-भिन्न विषयोंमें अनुसंधान करनेके लिये सूचना देना था । इसीकारणसे

इस रेडियो-दर्पणकी खोजके लिये एक विशेष प्रकारका प्रेषक जिसकी लहर-लंबाई काफी दूर तक बदली जा सकती थी, टडिंगटनमें राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला (National Physical Laboratory) में बनाया गया।

काम करने वाले वैज्ञानिकोंमेंसे सर्वप्रथम प्रोफेसर ऐपिल्टन ही थे। यह इस समितिके सदस्य भी थे। इन्होंने अपना ग्राहक लन्दनके किंग्स कालेजमें रक्खा। लन्दनके अतिरिक्त इस प्रकारके ग्राहक केम्ब्रिज और पीटर-

चित्र ११
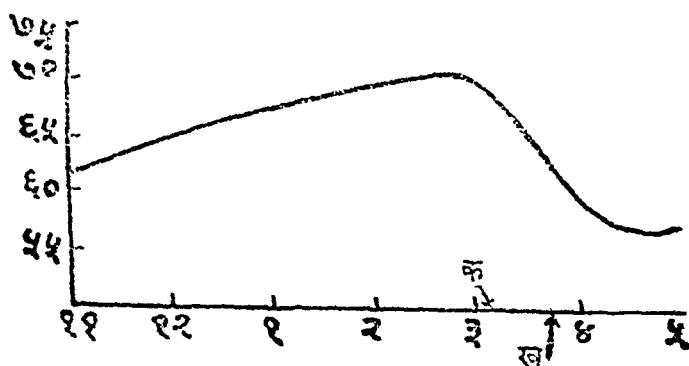
खड़ी रेखा मीलोंमें ऊँचाई बताती है तथा आड़ी रेखा समय बताती है।

क—पृथ्वीसे ६५ मील ऊपर सूर्योदयका समय

ख—पृथ्वीपर सूर्योदयका समय

बरोंमें भी लगाये गये। इस तरह टडिंगटनसे तो संकेत भेजे

जाते थे तथा इन तीनों स्थानों पर साथ-साथ सुने जाते थे। सबसे पहले केनली-हैवीसाईड स्तरकी काफ़ी समय तक खोज करके यह लोग यह देखना चाहते थे कि इस स्तरकी ऊंचाई दिन तथा रातके साथ घटती-बढ़ती है या नहीं। पहले-पहल यह अपने प्रेषकसे लगभग ४०० मीटर लहर-लंबाई वाली किरणों पर संकेत भेजते थे और इनको सुनकर यह स्तरकी ऊँचाई निकालते थे। चित्र ११ में यह बतलाया गया है कि गर्मियोंकी रातमें इस स्तरकी ऊँचाईमें समयके साथ किस प्रकार परिवर्तन होता है। इस चित्रसे यह साफ़ विदित है कि इस दर्पणकी ऊँचाई पहले तो धीरे-धीरे बढ़ती रहती है यहाँ तक कि ३ बजनेके कुछ पहले यह सबसे अधिक हो जाती है। इसके बाद यह एक दमसे गिरती है और अन्तमें दिनमें जो इसकी ऊँचाई रहती है उसके बराबर पहुँच जाती है। इस प्रकारके अनुलेखोंसे दो बड़ी रोचक बातें ज्ञात होती हैं। एक तो यह कि इस दर्पण की ऊँचाईमें काफ़ी परिवर्तन होता है और दूसरे इससे यह भी ज्ञात होता है कि इस रेडियो-दर्पणमें यह परिवर्तन किस कारणसे होता है। चित्रमें दो वायुके चिह्न बनाये गये हैं जिनमें से एक तो वह समय बतलाता है जब कि सूर्य अनुमानतः अँधेरेके दिन पृथ्वीकी सतहसे ६५ मील ऊपर उदय होता है तथा दूसरा उसी दिन पृथ्वीकी सतह प

सूर्योदयका समय बतलाता है और क्योंकि इस दर्पणकी ऊँचाईमें परिवर्तन अधिकतः इन्हीं दोनों बाणोंके बीचमें होता हैं अतः इससे यह स्पष्ट परिणाम निकलता है कि सूर्यकी किरणोंके वायुमंडल पर पुनः पड़नेके कारण ही यह रेडियो-दर्पण नीचा हो जाता है। यद्यपि और भी बहुतसे कारण हैं जिनसे हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि सूर्य तथा रेडियो-दर्पणमें काफी सम्बन्ध है परन्तु इस अनुलेखमें तो हम साफ देखते हैं कि सूर्यके उदय तथा अस्त होनेसे रेडियो-दर्पण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। हम पहले लिख आये हैं कि ऊपरी वायुमंडलके परमाणु सूर्यकी ही किरणोंके कारण यापित होते हैं और इसीसे हैवीसाईड स्तर-की उत्पत्ति होती हैं अतः यह स्वाभाविक है कि जब सूर्यकी किरणें हटाली जावें तो इस स्तरके कुछ ऋणाणु फिरसे परमाणुओंसे मिल जावें जिनसे यह पहले इन किरणोंके कारण पृथक् हो गये थे। जितना ही अधिक यह ऋणाणु पृथ्वीके निकट होंगे उतना ही वहाँके परमाणुओंसे इनके मिलनेकी संभावना होगी क्योंकि वहाँ पर हवा घनी होती जावेगी अतः जैसे-जैसे सूर्य डूबता जावेगा तथा इसकी किरणें ऊपर उठती जावेंगी वैसे ही इस स्तरके नीचेके भाग-के ऋणाणु परमाणुओंसे मिलते जावेंगे इससे इस स्तरकी ऊँचाई बढ़ती हुई सी प्रतीत होगी। जैसे-जैसे ऊँची सतहों पर जाते जावेंगे ऋणाणु परमाणुओंसे कम मिलेंगे

यहाँ तक कि पृथ्वीकी सतहसे लगभग ७२ मीलकी ऊँचाई पर साम्य (equilibruim) हो जावेगा और यही हेवीसाईड दर्पणके नीचेका भाग मालूम होने लगेगा ।

इन बातोंके अतिरिक्त रेडियो दर्पणकी रात दिन खोज करने से और भी बहुत सी आश्चर्यजनक तथा रोचक बातें ज्ञात हुईं । यद्यपि अधिकतर रातोंमें ऐसे ही अनुलेख मिले जैसा कि हम चित्र ११ में बता चुके हैं परन्तु कभी-कभी और विशेषतः सर्दियोंकी रातके कुछ लेख इनसे बिल्कुल ही भिन्न थे । इनसे ऐसा प्रतीत होता था कि पौ फटनेके करीब एक घंटा पहले रेडियो-दर्पणकी ऊँचाई एक दम दुगनी हो गई । और दिन निकलनेके समय यह फिरसे पहले जितनी हो गई । पहले तो ऐसे लेखों पर वैज्ञानिकोंको विश्वास नहीं हुआ । वे सोचने लगे कि शायद यह उपकरण-की किसी खराबीके कारण होगा, नहीं तो दर्पणकी ऊँचाई एक दममें कैसे बदल सकती है परन्तु जब तमाम प्रयोग बड़ी होशियारी तथा यथार्थताके साथ किये गये और फिर भी वैसे ही अनुलेख मिले तो वैज्ञानिकों ने इस पर विशेष ध्यान देना आरम्भ किया । प्रोफेसर ऐप्लिटनको भी ऐसे कई लेख मिले । इस प्रकारका एक लेख जिसकी सहायता-से वे इस बातके अवलोकनों में सफल हुए चित्र १२ में दिया गया है । इस प्रकारके अनुलेखोंको किस तरहसे समझाया जा सकता है ? जिससे स्पष्ट है कि या तो रेडियो-

दर्पण एक दमसे ७५ मील और ऊपर उठ गया और कुछ समय बाद फिर एक दमसे नीचे उतर आया जो बिल्कुल ही ठीक नहीं जँचता। या किसी कारणवश सर्वदा आने वाली तरंग जो एक बार ऊपर जाकर तथा परावर्तित होकर आती थी, ग्राहक पर नहीं आती परन्तु एक दो बार परावर्तित होने वाली किरण अर्थात् जो किरण एक बार ऊपर
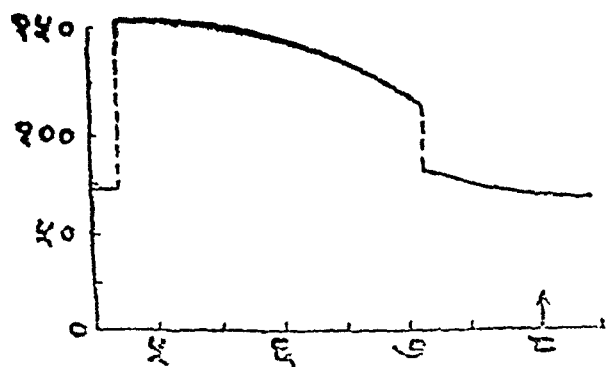
चित्र १२

खड़ी रेखा मीलोंमें परावर्तित किरणोंकी ऊँचाई बताती है तथा आड़ी रेखा समय बताती है। बाणका चिन्ह पृथ्वीपर सूर्योदयका समय बताता है।

जाकर और परावर्तित होकर नीचे आई है तथा फिर ऊपर जाकर और दुबारा परावर्तित होकर आती है, ग्राहकमें आने लगती है। अमरीकाके वैज्ञानिकोंने इन अनुलेखोंको इस

प्रकारसे ही समझाया था, और यह बात कुछ ठीक-ठीक भी मालूम होती थी क्योंकि दो बार परावर्तित होने वाली किरणका पथ एक बार परावर्तित होने वाली किरणसे ठीक दूना होगा। परन्तु प्रोफसर ऐपिलटन ने कहा कि जब दो बार परावर्तित किरण ग्राहकमें आ सकती है तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि एक बार परावर्तित किरण ग्राहकमें न आवे। फिर उनके लेखमें जो चित्र १२ में दिखाया गया है पहली बार तो रेडियो दर्पण ७५ मीलसे ठीक इसकी दूनी ऊँचाई १५० मील पर एक दमसे उठ गया है परन्तु इसके बाद यह धीरे-धीरे नीचा होता जाता है और अन्तमें जब ११० मील ऊँचा रहता है तब यह एक दमसे फिर ७५ मीलकी ऊँचाई तक गिर जाता है परन्तु यह ऊँचाई जहाँ यह उतरता है ११० मीलको ठीक आधी नहीं है। अतः प्रोफसर ऐपिलटन ने बतलाया कि यह घटना उपर्युक्त मतके अनुसार नहीं है। उन्हें अपने प्रयोगोंकी यथार्थता पर इतना विश्वास था कि उन्होंने कहा कि इस प्रकारके लेख एक दूसरे रेडियो-दर्पणके कारण ही समझाये जा सकते हैं जो पहले रेडियो-दर्पणसे लगभग दूनी ऊँचाई पर है। इन्होंने इसे अच्छी तरहसे समझानेके लिये बादमें बतलाया कि जैसे जैसे रात पड़ती जाती है हैवीसाईड-स्तर निर्बल होती जाती है अन्तमें एक समय यह इतनी निर्बल हो जाती है कि जिस लहर-लम्बाई पर यह काम कर रहे थे

उसे यह परावर्तित नहीं कर सकती और संकेत इस स्तरके अन्दरसे निकल जाते हैं अतः पहले दर्पणसे परावर्तित होनेके बजाय यह तरंग आकाशमें और ऊपर चली जाती है और अन्तमें एक दूसरे दर्पणसे परावर्तित होती है। यह दूसरा ऋणाणु-स्तर इन्हींके नाम पर ऐपिलटन-स्तर कहलाता है। इसे फ-स्तर भी कहते हैं। इसी प्रकार हैवीसाईड स्तरको ई-स्तर भी कहते हैं।

इस प्रकारसे परावर्तित किरणके एक दर्पणसे दूसरे दर्पण पर कूद जानेकी घटनाको एक और भी अच्छी तथा रोचक-विधिसे देखा जा सकता है। यह विधि प्रयोगके इस प्रकार करने पर निर्भर है जिसके सफल होनेकी प्रोफेसर ऐपिलटनको कोई आशा नहीं थी—अर्थात् प्रेपकसे ग्राहक तक, पृथ्वीके बराबर-बराबर आने वाली किरण और ऊपरके किसी दर्पणसे परावर्तित होकर आने वाली किरणके समयांतरको, जो एक सैकेण्डके हजारवें भागके लगभग होता है, नापने में। इस प्रकारके प्रयोगोंको सफलता पूर्वक करनेका महत्व अमरीकाके दो वैज्ञानिक जी० ब्राईट और एम० ए० ट्यूवको है। इस विधिके कारण आयन-मंडल (पवन मंडल) की खोज करनेमें बहुत सुभीता ही नहीं मिला है वरन् आयन-मंडलकी जो-जो बारीकियाँ मालूम हुई हैं वे अधिकतः इसीके कारण हैं। इसमें एक ऐसा प्रेपक काममें लाया जाता है जिससे प्रत्येक सैकेण्डके

पचासवें हिस्सेके बाद (बहुत थोड़े समयके लिये) रेडियो तरङ्गका एक स्पंद (pulse) भेजा जाता है। रेडियो तरङ्गका प्रत्येक स्पंद एक सैकेण्डके हज़ारवें हिस्सेके समय तक रहता है। परन्तु रेडियो किरणें इतनी तेज़ चलती हैं कि इस थोड़ेसे समयमें ही प्रेषकसे बहुत-सी लहर-लम्बाई निकल जाती हैं और यह रेडियो दर्पणकी खोज करनेके लिये काफी होती है।

ग्राहक पर सीधी तथा परावर्तित किरणोंको पृथक्-पृथक करनेके लिये कैथोड् किरण-दोलन-लेखक (cathode ray-oscillograph) काममें लाया जाता है। यह आधुनिक विज्ञानका बहुत ही कामका यन्त्र है। आजकल तथा भविष्यके रेडियोकी नये-नये उपयोगोंमें इसके बहुत लाभदायक प्रमाणित होनेकी आशा है। यह दूर-दर्शन (television) में भी काममें आता है वरन् इसीके कारण दूर-दर्शनमें इतनी उन्नति हुई है। इन सब बातोंको विचारमें रखते हुए हम यहाँ इसका संक्षेप वर्णन देना पर्याप्त समझते हैं। यह कोई वैसी पेचीली वस्तु नहीं है जैसा कि इसके नामसे प्रतीत होता है। इससे हम ऋणाणुओंकी धाराको जो चाहे जिस शक्तिसे इधर-उधर खींची जा सकती हैं यड़ी आसानीसे देख सकते हैं। इसमें ऋणाणु इसलिये काममें नहीं लिये जाते कि उनकी सहायतासे एक रेडियो-दर्पण बन सकता है वरन् सिर्फ इस-

लिये कि जितने कण मनुष्य-मात्रको ज्ञात हैं उनमें यह सब से हल्के हैं। यदि किसी शक्तिके कारण इनको कोई धक्का दे दिया जाय तो यह बड़ी तेज़ीसे एक तरफ जाने लगते हैं परन्तु तारीफ यह है कि इस शक्तिके हटाते ही यह तुरन्त फिर अपनी जगह पर वापस आ जाते हैं। देखने तथा फ़ोटोग्राफ़ लेनेके सुभीतेके लिये यह दोलन-लेखक इस प्रकारसे बनाया जाता है कि ऋणाणु-धारा एक अति दीप्त सतह पर गिरती है जिससे उस सतह पर जहाँ-जहाँ वह ऋणाणु-धारा गिरती है एक हरी रोशनी दृष्टि-गोचर होने लगती है। ग्राहक दोलन-लेखकसे इस प्रकार लगाया जाता है कि रेडियो-तरङ्गके जो स्पंद आते हैं उनके कारण रोशनीका निशान ऊपरको तरफ कूदने लगता है। रेडियो ग्राहकमें होकर जो-जो संकेत आवेंगे उन सबके कारण रोशनीका निशान ऊपर नीचे कूदने लगेगा। अब यदि कोई विधि ऐसी काममें लाई जावे जिससे हम प्रत्येक संकेतोंको पृथक्-पृथक् देख सकें तो हमारी कठिनाई दूर हो जायेगी। इस कठिनाईको दूर करनेके लिये एक बहुत सरल विधि काममें लाई जाती है। इसके लिये सिर्फ इसी बातकी आवश्यकता है कि यह निशान आपसे आप दांयेंसे बांयेंकी ओर चलने लग जावे और इसके बाद कूद कर फिर बड़ी तेजीसे वापस अपनी जगह पर आ जावे और इस प्रकारसे ऐषकी तालमें अर्थात् एक सैकेण्डमें पचास बार चलता

रहे। ऐसा होने पर जब कभी निशान बार-बार एक सैकेंड के पचासवें हिस्सेके बाद ऊपर कूदेगा तो इस तरहसे कूदनेकी जगह हमेशा एक ही जगह दिखाई देगी और भिन्न-भिन्न समय पर आने वाले संकेत इस पर अलग-अलग दिखाई देंगे। अतः हम देखते हैं कि कैथोड किरण-दोलन-लेखकसे वैज्ञानिकोंको रेडियो-दर्पणकी खोज करनेमें किस प्रकारसे सहायता मिली है। हम जानते हैं कि प्रेषक प्रत्येक सैकेण्डके पचासवें हिस्सेके बाद रेडियो-स्पंद भेज रहा है अतः जो स्पंद ग्राहक पर पहुँचेंगे वे चाहे सीधे रास्तेसे गये हों या रेडियो-दर्पणसे परावर्तित होकर, दोनों दशामें उसी पथसे आने वाले दूसरे स्पंदोंके ठीक एक सैकेण्डके पचासवें हिस्सेके बाद पहुँचेंगे। परन्तु सीधे रास्तेसे आने वाले और ऊपरसे परावर्तित होकर आने वाले स्पंदके पहुँचनेमें कुछ समयका अन्तर होगा जो लगभग एक सैकेण्डके हजारवें हिस्से या इससे कुछ ज्यादाके बराबर होगा। अतः जो स्पंद सीधे रास्तेसे आता है वह रोशनीके हरे निशानसे बनाई हुई आड़ी रेखा पर एक स्थिर तथा खड़ी नोक-सा मालूम होगा। और परावर्तित होकर आने वाला स्पंद इस नोकके कुछ हटकर एक ऐसी ही दूसरी नोक-सा मालूम होगा। यदि यह परावर्तित किरण हेवीसाइड-दर्पणके स्थान पर ऐपिलटन-दर्पणसे आ रही हो तो इसकी नोक और भी अधिक हट करके होगी अर्थात्

सीधी किरणको बताने वाली नोकमें और इसमें और भी अधिक दूरी होगी। पृथ्वीके बराबर-बराबर आने वाली किरणकी नोक, और परावर्तित किरणकी नोककी दूरी नाप करके तथा यह जानते हुए कि दोलन-लेखकमें पूरी आड़ी रेखा खिंचने समयमें बनती हैं यह मालूम कर लेते हैं कि दोनों किरणोंके ग्राहक पर पहुँचनेके समयमें कितना अन्तर है और इससे रेडियो-दर्पणकी ऊँचाई मालूम कर लेते हैं।

दोलन-लेखककी सहायतासे हम यह भी बड़ी आसानी से देख सकते हैं कि रेडियो-किरण एक दर्पणसे परावर्तित होती-होती दूसरेसे कैसे परावर्तित होने लग जाती है।

६·३० ६·५० ७·१०

चित्र १२
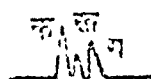
इस समय हम देखेंगे कि पहले दर्पणसे आने वाली किरण धीरे-धीरे निर्बल होती जा रही है मानो यह दर्पण अब रेडियो किरणोंको परावर्तित करते-करते थक गया हो। इसके कुछ समय बाद ऊपरी दर्पणसे किरण आने लगती है जो धीरे-धीरे तेज होती जाती है और अन्तमें यही अकेली रह जाती है। यह सब चित्र १२ में तीन भागोंमें बड़ी अच्छी तरह दिखाया गया है। इसमें 'क' तो

वह किरण है जो पृथ्वीके बराबर-बराबर आती है, 'ख' वह किरण है जो हैवीसाईड स्तरसे परावर्तित होकर आती है तथा 'ग' ऐपिलटन-स्तरसे परावर्तित होकर आती है। चित्रमें जो विन्दुके चिह्न बने हैं वे एक सैकेण्डके हजारवें हिस्सेके समयांतरको बताते हैं। चित्रके पहले भागमें सिर्फ हैवीसाईड-स्तरसे ही बड़ी प्रबल किरण आ रही है परन्तु दूसरे भागमें ऐपिलटन-स्तरसे भी किरण आने लग गई है और हैवीसाईड-स्तर वाली किरण काफी निर्बल हो गई है तथा तीसरे भागमें हैवीसाईड-स्तर वाली किरण बिल्कुल अदृश्य हो गई है और ऐपिलटन-स्तर वाली किरण काफी प्रबल आ रही है। अतः हम देखते हैं कि ४० मिनटके अन्दर-अन्दर किस प्रकारसे हैवीसाईड-स्तरसे रेडियो-तरङ्गोंका परावर्तित होना बिल्कुल बन्द होकर ऐपिलटन-स्तरसे होना आरम्भ हो गया है।

अभी तक हमने जितने प्रयोगों तथा उनके परिणामों-का वर्णन किया है वे प्रेषकसे जाने वाली रेडियो किरणोंकी एक ही आवृति रख कर किये गये थे। इस प्रकारसे प्रयोग करने पर यदि हम एक रेडियो दर्पणके स्थान पर दूसरे ऊपरके रेडियो-दर्पणसे अपनी किरणको परावर्तित होते देखना चाहें तो हमें दिनके विशेष समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और यह समय तभी होगा जब कि नीचे वाले दर्पणके ऋणाणु इतने कम हो गये होंगे कि वह दर्पण

हमारी किरणोंको परावर्तित करनेमें असमर्थ हो जावे जिससे यह किरणें इस दर्पणको पार करके ऊपरके दर्पणसे परावर्तित होने लगें। परन्तु यदि दिनके किसी भी समय हम इस घटनाको देखना चाहते हैं तो हमें अपने प्रेपककी आवृत्ति बदलनी पड़ेगी। यह तो हम जानते ही हैं कि जितनी अधिक हमारी रेडियो-किरणोंकी आवृत्ति होगी उतनी ही हमें इन किरणोंको परावर्तित करनेके लिये अधिक ऋणाणुओंकी आवश्यकता होगी। और क्योंकि दिनके विशेष समयमें किसी एक रेडियो-दर्पणमें एक नियत ऋणाणु होते हैं अतः यदि हम अपने प्रेपककी आवृत्ति बढ़ाये जावें तो अन्तमें हम ऐसी आवृत्ति पर पहुँचेंगे कि जिससे थोड़ा अधिक और बढ़ाने पर उस दर्पणसे रेडियो किरणें परावर्तित नहीं हो सकेंगी और यह इस दर्पणको पार कर जावेंगी। इसी आवृत्तिको इस स्तरकी चरम आवृत्ति (critical frequency) कहते हैं। किसी स्तरकी चरम आवृत्तिको ज्ञात करके हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि उस स्तरमें सबसे अधिक कितने ऋणाणु हैं। अब यदि हम अपने प्रेपककी आवृत्ति इस चरम आवृत्तिसे कुछ और बढ़ादें तो हमारी किरण इस दर्पणसे परावर्तित होनेकी जगह ऊपर वाले दर्पणसे परावर्तित होने लगेंगी। अब हम अपने प्रेपककी आवृत्ति बढ़ाये ही जावें तो अन्तमें हम इस ऊपर वाली स्तरकी चरम आवृत्ति

वह किरण है जो पृथ्वीके बराबर-बराबर आती है, 'ख' वह किरण है जो हैवीसाईड स्तरसे परावर्तित होकर आती है तथा 'ग' ऐपिलटन-स्तरसे परावर्तित होकर आती है। चित्रमें जो बिन्दुके चिह्न बने हैं वे एक सेकेण्डके हजारवें हिस्सेके समयांतरको बताते हैं। चित्रके पहले भागमें सिर्फ हैवीसाईड-स्तरसे ही बड़ी प्रबल किरण आ रही है परन्तु दूसरे भागमें ऐपिलटन-स्तरसे भी किरण आने लग गई है और हैवीसाईड-स्तर वाली किरण काफी निर्बल हो गई है तथा तीसरे भागमें हैवीसाईड-स्तर वाली किरण बिल्कुल अदृश्य हो गई है और ऐपिलटन-स्तर वाली किरण काफी प्रबल आ रही है। अतः हम देखते हैं कि ४० मिनटके अन्दर-अन्दर किस प्रकारसे हैवीसाईड-स्तरसे रेडियो-तरङ्गोंका परावर्तित होना बिल्कुल बन्द होकर ऐपिलटन-स्तरसे होना आरम्भ हो गया है।

अभी तक हमने जितने प्रयोगों तथा उनके परिणामों-का वर्णन किया है वे प्रेषकसे जाने वाली रेडियो किरणोंकी एक ही आवृत्ति रख कर किये गये थे। इस प्रकारसे प्रयोग करने पर यदि हम एक रेडियो दर्पणके स्थान पर दूसरे ऊपरके रेडियो-दर्पणसे अपनी किरणको परावर्तित होते देखना चाहें तो हमें दिनके विशेष समयकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और यह समय तभी होगा जब कि नीचे वाले दर्पणके अणु इतने कम हो गये होंगे कि यह दर्पण

हमारी किरणोंको परावर्तित करनेमें असमर्थ हो जावे जिससे यह किरणें इस दर्पणको पार करके ऊपरके दर्पणसे परावर्तित होने लगें। परन्तु यदि दिनके किसी भी समय हम इस घटनाको देखना चाहते हैं तो हमें अपने प्रेषककी आवृत्ति बदलनी पड़ेगी। यह तो हम जानते ही हैं कि जितनी अधिक हमारी रेडियो-किरणोंकी आवृत्ति होगी उतनी ही हमें इन किरणोंको परावर्तित करनेके लिये अधिक ऋणाणुओंकी आवश्यकता होगी। और क्योंकि दिनके विशेष समयमें किसी एक रेडियो-दर्पणमें एक नियत ऋणाणु होते हैं अतः यदि हम अपने प्रेषककी आवृत्ति बढ़ाये जावें तो अन्तमें हम ऐसी आवृत्ति पर पहुँचेंगे कि जिससे थोड़ा अधिक और बढ़ाने पर उस दर्पणसे रेडियो किरणें परावर्तित नहीं हो सकेंगी और यह इस दर्पणको पार कर जावेंगी। इसी आवृत्तिको इस स्तरकी चरम आवृत्ति (critical frequency) कहते हैं। किसी स्तरकी चरम आवृत्तिको ज्ञात करके हम यह ज्ञात कर सकते हैं कि उस स्तरमें सबसे अधिक कितने ऋणाणु हैं। अब यदि हम अपने प्रेषककी आवृत्ति इस चरम आवृत्तिसे कुछ और बढ़ादें तो हमारी किरण इस दर्पणसे परावर्तित होनेकी जगह ऊपर वाले दर्पणसे परावर्तित होने लगेगी। अब हम अपने प्रेषककी आवृत्ति बढ़ाये ही जावें तो अन्तमें हम इस ऊपर वाली स्तरकी चरम आवृत्ति

तक भी पहुँच जावेंगे और हमारी किरणोंका इस स्तरसे भी परावर्तित होना बन्द हो जावेगा तथा वे इसको भी पार कर जावेंगी और इसके भी ऊपर यदि कोई और नई यापित स्तर हुई तो उससे फिर परावर्तित होने लगेगी। अतः हम देखते हैं कि तमाम आयनमंडलको पूरा-पूरा खोज निकालनेकी हमें एक नई विधि ज्ञात हो गई है। यदि हम अपने प्रेषकसे पहले बहुत कम आवृत्ति वाली रेडियो-किरणें भेजें और फिर इनकी आवृत्तिको धीरे-धीरे बढ़ाते-बढ़ाते बहुत अधिक कर दें तो हम आयन मंडलकी पूरी-पूरी खोज कर डालेंगे तथा हमें ज्ञात हो जावेगा कि इन दो रेडियो दर्पणोंके अतिरिक्त और भी रेडियो दर्पण हैं या नहीं।

इसी प्रकार प्रयोग करने पर जो अनुलेख मिले हैं उनमेंसे एक चित्र १४ में दिखाया गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि प्रेषककी आवृत्ति बढ़ाये जाने पर ऊपरी दर्पणोंसे परावर्तित किरणें कितनी दूरीसे आती हैं। इसमें हम देखते हैं कि यह लेख तीन जगह टूटा हुआ है और जहाँ-जहाँ यह टूटा हुआ है भिन्न-भिन्न स्तरोंकी चरम आवृत्ति बताता है। अतः इससे स्पष्ट है कि आयन मंडलमें चार जगह उच्चतम घनत्वकी जगहें हैं अर्थात् यहाँ चार भिन्न भिन्न स्तर हैं। उनमें से सबसे नीचे वाली तो ई,-स्तर है जो हमारी पूर्व परिचित हैवीसाइड-स्तर है।

इसकी ऊँचाई ९० किलोमीटर (लगभग ५५ मील) के लगभग रहती है। इनमें सबसे ऊपर जो $फ_2$-स्तर है वह भी हमारी पूर्व परिचित ऐपिलटन- स्तर है और इसकी
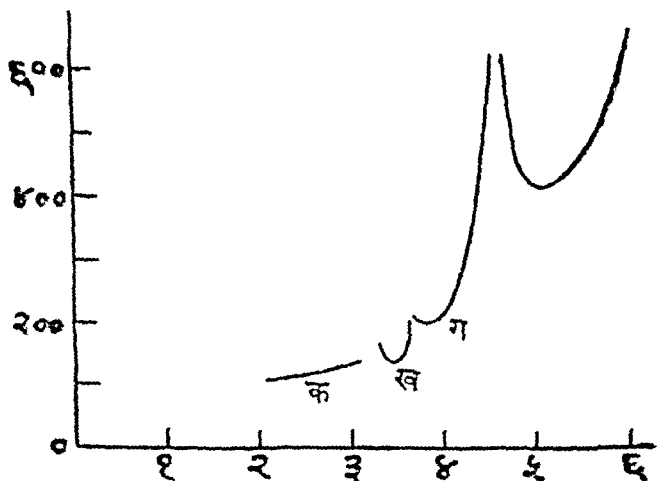
चित्र १४

खड़ी रेखा किलोमीटरमें परावर्तित किरणोंकी ऊँचाई बताती है तथा आड़ी रेखा मैगासाइकिलों (Maga Cycles) में प्रेषककी आवृत्ति

क—$इ_1$—स्तर   ग—$फ_1$—स्तर

ख—$इ_2$—स्तर   घ—$फ_2$—स्तर

ऊँचाई लगभग २५०-४०० किलोमीटर (१५०-२५० मील) के रहती है। यह दोनों स्तर सर्वदा रहती हैं।

इन चारों स्तरोंके अतिरिक्त ऐपिलटन, हेसिंग और गोल्डस्टेन ने बताया कि $इ_1$-स्तरके नीचे एक और स्तर प्रतीत होती है जो कि ऊपर जाने वाली किरणोंको कुछ-कुछ शोषण कर लेती है। यह स्तर ड-स्तरके नामसे कहलाती है। सबसे पहले प्रोफसर मित्रा तथा श्यामको इस स्तरसे परावर्तित किरणें मिलीं और इन्होंने बतलाया कि इसकी ऊँचाई ५५ किलोमीटर (३५ मील) के लगभग है। पहले तो वैज्ञानिकोंका विचार था कि यह स्तर ओपोण-मंडलमें ही हैं परन्तु बादकी खोजसे ज्ञात हुआ कि ओपोण-मंडल इस स्तरसे कुछ नीचे है। सन् १९२७-२८ ई० में चीनके कुछ प्रेपण-निर्दिष्टको समझानेके लिये एफ० एच० ऐडीज़ ने सोचा कि बहुत नीचे सतहोंमें एक यापित स्तर है जिसकी ऊँचाई लगभग १० किलोमीटर (६ मील) के होगी। सन् १९३६ के फालवैल तथा फ्रैरडके कुछ प्रयोगोंसे इसका समर्थन हुआ। हाल ही में वाटसन वाटको इतनी नीची स्तरोंसे कई बार परावर्तित किरणें मिली हैं जिनकी ऊँचाई २५-३० किलोमीटर (१५-२० मीलके लगभग) ही थी। इन नीची स्तरोंको स-स्तर कहते हैं। ड-तथा स-स्तरें $इ_2$ तथा $फ_1$ स्तरोंकी तरह ही सर्वदा नहीं मिलती। अभी तक इन पर काफी खोज नहीं हुई अतः इनके विषयमें पूरी तरहसे जानकारी नहीं होने पाई है।

यद्यपि $फ_2$-स्तरके ऊपरसे कोई तीव्र तथा लगातार

परावर्तित किरणें नहीं मिली हैं परन्तु फिर भी वहाँ से बहुत कमजोर तथा बहुत थोड़े समयके लिये परावर्तित किरणें कई बार मिली हैं। मित्रो का कहना है कि उन्हें फ$_2$ स्तरके ऊपरसे भी काफ़ी तीक्ष्ण परावर्तित किरणें मिली हैं। उन्होंने इन स्तरोंका नाम जी-स्तर तथा एच-स्तर रक्खा है और इन दोनोंकी ऊंचाई ६०० किलोमीटर (३६५ मील) और १२००-१८०० किलोमीटर (७२५-११०० मील) बताई है। परन्तु इसी विषयमें खोज करने वाले दूसरे वैज्ञानिकोंको इतने ऊँचेसे कोई परावर्तित किरणें अभी तक नहीं मिलीं अतः मित्रोंके इन परिणामों-का अभी तक समर्थन नहीं हुआ है।

चित्र १० [illegible] के पैनल, वाहक तथा उनके साथके दूसरे यंत्र

ऋणाणुओंके बादलोंसे टकरा कर वापस आ सकती हैं जो सूर्यसे चलकर पृथ्वी तक आते हैं तथा पृथ्वीके चुम्बकत्वके कारण यह मुड़से जाते हैं। सन् १९२६ ई० में हल्सको बहुत देरसे आने वाली एक किरण मिली। यह ४ मिनट और २० सैकेण्डके बाद आई थी। डैनमार्कके एक प्रसिद्ध गणितज्ञ डा० पी० ओ० पडरसन् ने बतलाया कि प्रोफेसर स्टारमरके सिद्धान्तसे हम केवल उन्हीं किरणोंको समझानेमें सफल होंगे जो अधिकसे अधिक ६० सैकेण्डके बाद तक आती हैं। अतः अभी तक इन बहुत देरसे आने वाली किरणोंको अच्छी तरह समझानेमें वैज्ञानिक सफल नहीं हुए हैं।

अभी तक वैज्ञानिक पवन-मंडलमें नई-नई स्तरोंकी खोज करनेमें लगे हुए थे। अब उनका ध्यान इस तरफ गया कि इन स्तरोंमें और विशेषतः हर समय उपस्थित रहने वाली केनली-हेवीसाइड तथा ऐपिलटन स्तरोंमें समय तथा मौसमके साथ क्या-क्या परिवर्तन होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी देखना था कि संसारके भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोज करनेसे भी इनमें कोई भिन्नता मिलती है या नहीं। इसीलिये संसारमें कई जगहों पर इस विषय पर खोज होनी आरम्भ हुई। इसी विचारसे भारतवर्षमें भी कलकत्ता तथा इलाहाबादमें ऐसा ही काम आरम्भ किया गया और अभी तक किया जा रहा है। इलाहाबादमें लेखक ने जो उप-

करण इसी प्रकारकी आयन-मंडल (यवन-मंडल) की खोजके लिये काममें लिया था वह चित्र १५ में दिखाया गया है। इसमें दांई तरफ तो प्रेषक रक्खा हुआ है जो एक सैकेण्डके पचासवें हिस्सेके बाद रेडियो-स्पंद भेजता है। इसकी आवृत्ति २ मैगा साईकिल प्रति सैकेण्डसे १८ मैगा साइकिल प्रति सैकेण्ड तक बदली जा सकती है। चित्रके बीचमें ग्राहक रक्खा हुआ है और ग्राहक तथा प्रेषकके बीचमें कैथोड-किरण-दोलन लेखक है जिस पर परावर्तित रेडियो किरणोंको देखा जा सकता है तथा इनके चित्र लिये जा सकते हैं। चित्रके बाँई तरफ जो यंत्र है उससे कैथोड-किरण-दोलन-लेखकको चलानेके लिये जिन-जिन भिन्न-भिन्न वोल्टों (voltages) की आवश्यकता है वे दिये जाते हैं। इस यंत्र में एक ही आदमी एक हाथसे प्रेषककी आवृत्ति बदल सकता है तथा दूसरे हाथसे ग्राहकका सुर मिला सकता है। प्रेषकके पीछेका भाग चित्र १६ में दिखाया गया है। अमेरिकामें वाशिंगटनमें जो राष्ट्रीय प्रमाप-शोधक-संस्था (नेशनल ब्यूरो आफ स्टैण्डर्ड) की तरफ से इसी प्रकारका यंत्र बनाया गया है उसमें काम करनेके लिये किसी आदमीकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी आवृत्ति अपने आप बदल जाती है तथा इसके साथ साथ ही ग्राहक भी अपने आप एक सुर हो जाता है। इसके अतिरिक्त कैथोड-किरण-दोलन-लेखक पर
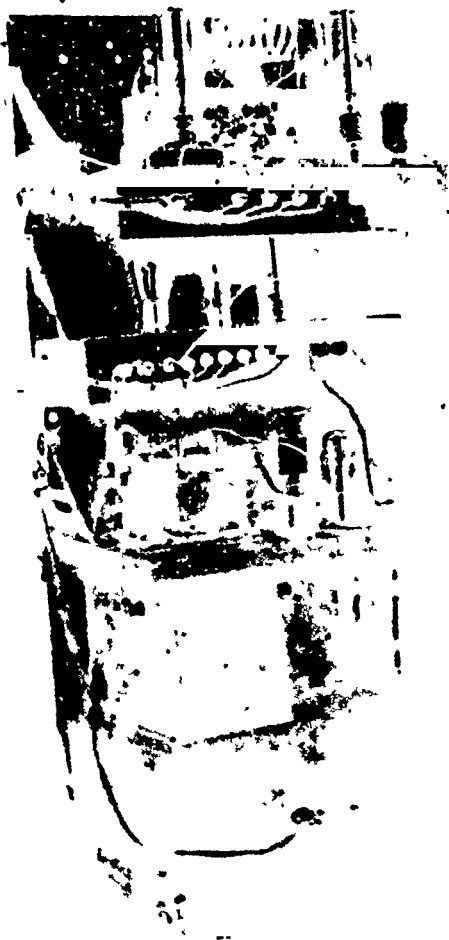
चित्र १६

लेखकके प्रेषकके पिछले भागका चित्र
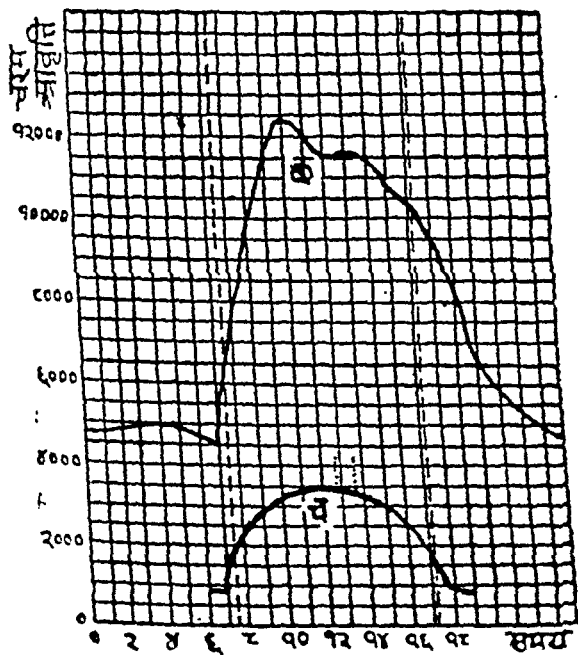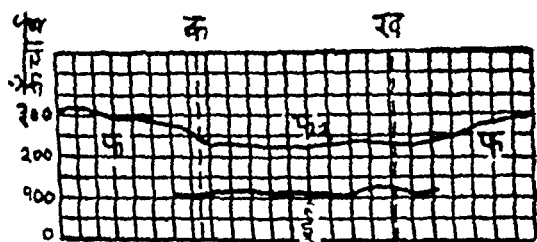
चित्र १७

आयन मंडलकी भिन्न-भिन्न स्तरोंकी ऊँचाई तथा चरम आवृत्ति का जनवरी सन् १९३१ ई० का निर्देश

क—सूर्योदय का समय

ख—सूर्यास्तका समय

च—E_1-स्तरकी चरम आवृत्ति

छ—F_2-स्तरकी चरम आवृत्ति

चरम आवृत्ति किलो साइकिल प्रति सैकेण्ड में तथा ऊँचाई किलोमीटर में दिखाई गई है।

जो परावर्तित किरणें आती हैं उनका चित्र भी उससे आप खिंच जाता है।

ऊँचाई समयके साथ किस तरह बदलती है। इसको देखनेसे यह प्रत्यक्ष है कि इ-स्तरकी ऊँचाईमें बहुत अधिक परिवर्तन नहीं होता। इसमें अधिक-से-अधिक परिवर्तन १० मीटर (६ मील) का होता है। रातके समय इसकी ऊँचाई कुछ अधिक होजाती है जिसका कारण हम पहले ही पाठकोंको बतला आये हैं। इसके विपरीत फ$_2$-स्तरकी ऊँचाईमें बहुत परिवर्तन हो जाता है। हम देखते हैं कि इसकी ऊँचाई दिनमें १२ बजेके लगभग तो २२५ कि मी. है परन्तु रातको १ बजेके लगभग ३१५ कि. मी. हो जाती है। चित्रके नीचेके भागमें इन दोनों स्तरोंके लिये यह बतलाया गया है कि इनकी चरम आवृत्ति दिनके भिन्न-भिन्न समयके साथ कैसे बदलती है। या यों कहिये कि इनसे यह ज्ञात हो सकता है कि इन स्तरोंसे सबसे कम कितनी लहर-लंबाई वाली किरण परावर्तित हो सकती है। चित्रमें जो दो खड़ी कटी हुई रेखायें दिखाई गई हैं वे सूर्यके उदय होने तथा अस्त होने का समय बताती हैं।

चित्रसे यह स्पष्ट है कि रातके समय हेवीसाईड स्तरसे ३०० मीटर (१००० किलो साइकिलों) से कम लहर लम्बाई वाली किरणें परावर्तित नहीं हो सकतीं और दोपहरके समय भी ८८ मीटर (३४०० किलो साइकिलों) से कम लहर लम्बाई वाली किरणें परावर्तित नहीं होंगी। वास्तवमें यह निर्दिष्ट सीधी ऊपर जाकर वापस आने वाली किरणोंके

लिये है। परन्तु बहुत दूरी पर संकेत भेजनेमें किरणें सीधी ऊपर नहीं भेजी जातीं बल्कि यह इन स्तरोंसे एक कोण पर टकराती हैं। ऐसी दशामें इनको पृथ्वी पर आनेके लिये उतना अधिक नहीं मुड़ना पड़ता जितना कि सीधी ऊपर जाकर वापस आने वाली किरणोंको। इसी लिये यदि हम दूर संकेत भेज रहे हों तो रेडियो दर्पण जिन कमसे कम लहर-लंबाई वाली किरणोंको सीधे ऊपरसे परावर्तित कर सकता है उनकी लगभग चार गुणी और कम लहर लम्बाई वाली किरणें भेजनेमें सफल हो सकता है। अतः इस अवस्थामें हेवीसाईड-स्तरसे रातके समय कमसे कम ७५ मीटर लहर-लम्बाई वाली किरण तथा दिनके समय २२ मीटर

यहाँ शोषण कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त हेवीसाईड-स्तरके नीचेका भाग ही रेडियो किरणोंको अधिक शोषण करता है जो रातके समय लगभग बिल्कुल गायब हो जाता है। अतः रातके समय दर्पणसे परावर्तित होनेके पहले रेडियो किरणोंका बहुत कम शोषण होता है और यही कारण है कि रातको रेडियो-दर्पणके कमज़ोर होने पर भी दूरसे आने वाले संकेत अच्छी तरह सुनाई देते हैं। जो किरणें हेवीसाईड-स्तरसे परावर्तित नहीं हो सकतीं वे इसे पार करके ऐपिलटन-स्तरसे परावर्तित होती हैं। हम चित्र १७ में देखते हैं कि ऐपिलटन-स्तरसे सीधे ऊपरसे परावर्तित होने वाली किरणोंकी लहर लम्बाई रातके समय कमसे कम ६६ मीटर (४५०० कि. सा.) तथा दिनके समय कमसे कम २४ मीटर (१२३०० कि. सा.) हो सकती है। इस समय इससे कम लहर-लंबाई वाली किरणें ठीक ऊपरसे परावर्तित नहीं हो सकतीं। हम दूर भेजे जाने वाले संकेतोंका विचार करें तो इस स्तरसे परावर्तित होकर रातके समय तो लगभग १९ मीटर तथा दिनके समय लगभग ६ मीटरसे कम लहर-लम्बाई वाली किरण नहीं जा सकती। इससे यह प्रत्यक्ष है कि जो किरणें हेवीसाईड-स्तरको पार कर जाती हैं वे ऐपिलटन-स्तरसे बड़ी आसानीसे परावर्तित हो जाती हैं।

हमने जो ऊपर बताया कि बहुत दूर तक संकेत

भेजनेके लिये जो कमसे कम लहर-लम्बाई वाली किरण इन स्तरोंसे परावर्तित हो सकती हैं वह सीधी ऊपरसे परावर्तित होने वाली कमसे कम लहर-लंबाई वाली किरणकी चार गुणी कम होंगी, पर ऐसा हर समय नहीं होता। वास्तवमें सीधी ऊपरसे परावर्तित होने वाली कमसे कम लहर-लम्बाई वाली किरणसे कितनी कम, कमसे कम लहर-लम्बाई वाली किरण हम दूरके स्टेशन पर सुन सकते हैं, यह सुनने वाले स्टेशन और प्रेषककी दूरी, तथा दोनों जगहोंके बीचके स्थान पर के आयन मंडलकी स्थिति पर निर्भर है, क्योंकि इसी स्थानके आयन-मंडलसे रेडियो किरणोंके परावर्तित होनेकी संभावना है। आजकल दूसरे निर्दिष्टोंके साथ-साथ राष्ट्रीय-प्रमाण-शोधक-संस्थाकी तरफसे वाशिंगटन नगरके ऊपरके आयन-मंडलके मासिक औसत निर्दिष्टका विचार रखते हुए ऐसे अनुलेख भी हर महीने छपते हैं जिनसे ज्ञात हो सकता है कि भिन्न-भिन्न दूरीके लिये तथा दिनके भिन्न-भिन्न समयके लिये कितनी सबसे कम लहर लम्बाई वाली किरण काममें लाई जा सकती है। ऐसे निर्दिष्ट रेडियो-इंजीनियरोंके लिये बहुत ही कामके हैं। और क्योंकि हम लगभग ८ वर्षसे आयन-मंडल की अच्छी तरहसे जाँच करते आये हैं अतः अब हम इस स्थिति पर पहुँच गये हैं कि यह देख कर कि आयन-मंडल प्रतिवर्ष तथा भिन्न-भिन्न मौसमके साथ किस तरह बद-

जाता है हम कमसे कम तीन-चार महीने आगेके लिये तो इसकी स्थितिका प्रायः ठीक-ठीक अनुमान लगा सकते हैं और इसकी सहायतासे ऊपर वर्णन किये हुए प्रकारके अनुलेख अगले तीसरे या चौथे महीनेके लिये मालूम कर
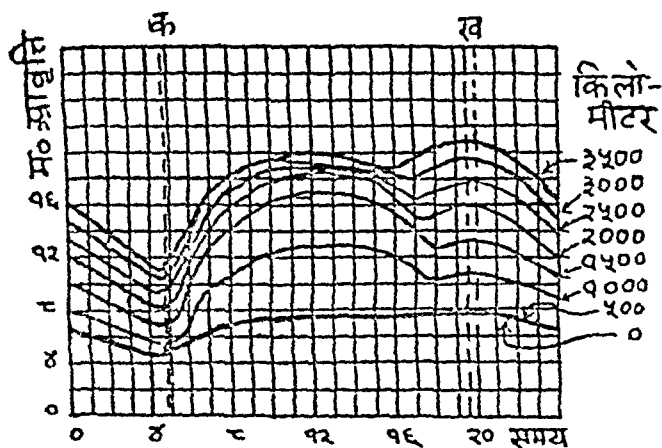
चित्र—१८

जोलाई सन् १६३६ ई० के लिये भविष्यवाणी किये हुये ऐसे अनुलेख जो दिनके भिन्न-भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न दूरी के लिये महत्तम आवृति बताते हैं।

क—सूर्योदयका समय

ख—सूर्यास्तका समय

महत्तम आवृत्तियां साइकिलों में दी गई हैं।

सकते हैं। राष्ट्रीय प्रमाण शोधक संस्थाकी तरफसे इसी प्रकार के निर्दिष्ट अगले चौथे महीनेके लिये और निर्दिष्टोंके साथ
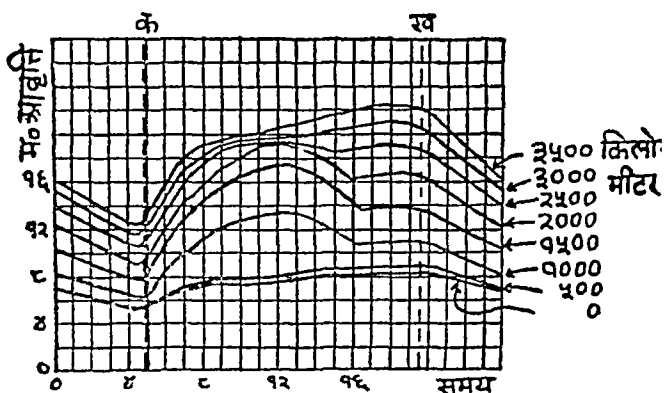
चित्र—१६

जोलाई सन् १६३६ के निर्दिष्ट से मालूम किये हुये अनुलेख जो दिनके भिन्न-भिन्न समय तथा भिन्न-भिन्न दूरी के लिये महत्तम आवृत्ति बताते हैं।

क— सूर्योदयका समय

ख— सूर्यास्तका समय

महत्तम आवृत्ति मैगा साइकिलों में दी गई है।

साथ कुछ समयसे छापे जाने लगे हैं। और यदि इस तरह

की भविष्य-वाणी किये हुए अनुलेखोंकी तुलना उसी महीने-के लिये इकट्ठे किये हुये निर्दिष्टोंसे खींचे हुए ऐसे अनु-लेखोंसे की जाय तो इनमें काफ़ी समानता मिलती है। चित्र १८ में जुलाई सन् १९३९ ई० के लिये जो अप्रैल सन् १९३९ ई० में भविष्य-वाणीकी गई थी वह अनुलेख दिखाया गया है और चित्र १९ में जुलाईके निर्दिष्टसे इसी प्रकारसे खींचे हुए अनुलेख दिखाये गये हैं। यह अनुलेख एन० स्मिथके बतलाये हुए सूत्रके आधार पर खींचे जाते हैं। हाल ही में लेखकने रेडियो किरणोंके आयन-मंडलमें शोषण हो जानेके प्रभावको विचारमें रखते हुए इस सूत्रमें कुछ परिवर्तन किया है जिसकी सहायतासे यह आशा की जाती है कि जो कुछ भी इन दोनों अनुलेखोंमें असमानता है वह बिल्कुल नहीं रहेगी।

चित्र २० में वाशिंगटन नगरके ऊपरके आयन मंडल का निर्दिष्ट जुलाई सन् १९३९ ई० के लिये दिखाया गया है। इसमें भी चित्र १७ की तरह ऊपरके भागमें भिन्न-भिन्न स्तरोंकी ऊँचाई तथा नीचेके भागमें इन स्तरों-की चरम-आवृत्ति बताई गई है। इसको देख कर हम इस बातका अच्छी तरह अनुमान लगा सकते हैं कि गर्मियोंमें आयन-मंडलकी कैसी स्थिति हो जाती है। इसमें फ$_1$-स्तर भी दिखाई गई है। क्योंकि हम पहले ही लिख आये हैं कि फ$_1$-स्तर केवल गर्मियों ही में मिलती है इसलिये
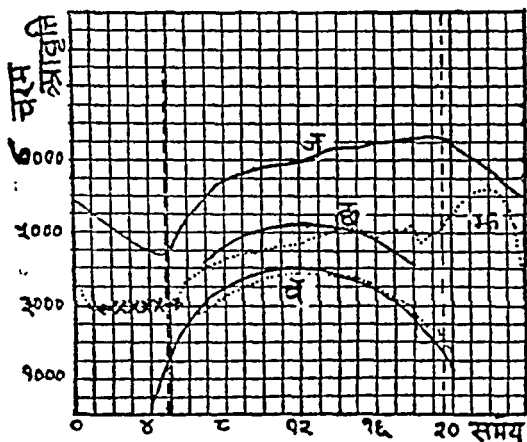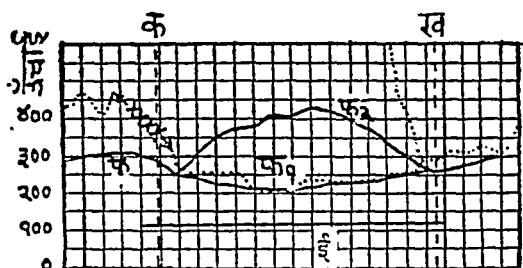
चित्र—२०

आयन मंडल की भिन्न-भिन्न स्तरोंकी ऊँचाई तथा चरम आवृत्ति का जोलाई सन् १६३३ ई० का निर्दिष्ट ।

क—सूर्योदयका समय

ख—सूर्यास्तका समय

घ—इ$_1$-स्तरकी चरम आवृत्ति
छ—फ$_1$-स्तरकी चरम आवृति
ज—फ$_2$-स्तरकी चरम आवृति
चरम आवृत्ति किलो साइकिल प्रति सैकेण्ड में
तथा ऊँचाई किलोमीटर में दिखाई गई है।

चित्र १७ में जिसमें सर्दियोंका निर्दिष्ट दिखाया गया है यह उपस्थित नहीं है। चित्रके ऊपरके भागसे हमें ज्ञात होता है कि इ$_1$—स्तरकी ऊँचाईमें तो सर्दियोंकी तरह कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता परन्तु फ$_2$—स्तरका व्यवहार अब बिल्कुल ही बदल गया है। हम देखते हैं कि फ$_2$—स्तरकी ऊँचाई दिनमें अब रातसे अधिक हो जाती है। यह एक समय तो लगभग ४२४ किलोमीटरके हो जाती है तथा रातको इसकी ऊँचाई ३०० किलोमीटर ही रहती है। हम देखते हैं कि सूर्योदयके लगभग एक घंटे बाद फ$_1$-तथा फ$_2$-स्तर एक दूसरेके पृथक् होती है। इसके बाद फ$_2$-स्तरकी ऊँचाई बढ़ती रहती है तथा फ$_1$ की घटती रहती है अन्तमें दोपहरके लगभग फ$_2$-स्तरकी ऊँचाई घटना तथा फ$_1$ की बढ़ना आरम्भ हो जाती है और अन्तमें यह दोनों स्तरें सूर्यास्तके लगभग एक घंटे पहले फिर एक दूसरेसे मिलकर एक स्तर हो जाती हैं। चित्रके नीचेके भागमें हम देखते हैं कि यद्यपि इ$_1$—स्तर

की चरम आवृत्ति रातके समय कमसे कम उतनी हो जाती है जितनी कि सर्दियोंमें थी परन्तु दिनके समय यह कुछ बढ़ गई है। इसके विपरीत दिनमें फ$_2$-स्तरकी चरम आवृत्ति सर्दियोंकी अपेक्षा कम हो जाती है यद्यपि रातके समय कमसे कम चरम आवृत्ति लगभग सर्दियोंके बराबर ही रहती है। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि गर्मियोंमें इ$_1$-स्तर शक्तिमान तथा फ$_2$-स्तर शक्तिहीन हो जाती है। चित्रमें इ$_2$-स्तर नहीं दिखाई गई है इसका कारण यह है कि यह फ$_1$-स्तरकी तरह गर्मियोंमें भी हमेशा नहीं मिलती।

चित्र २० में हम देखते हैं कि सूर्यके उदय होते ही इ$_1$-स्तर का यापन बढ़ना प्रारम्भ होता है और दोपहरके १२ बजे तक, जब कि सूर्य सबसे ऊपर आ जाता है बढ़ता रहता है परन्तु जैसे ही सूर्य नीचे होना आरम्भ होता है, यह भी घटना आरम्भ हो जाता है फ$_1$-स्तरका यापन भी ठीक इ$_1$-स्तरकी तरह ही घटता बढ़ता है, अर्थात् ठीक १२ बजे यह भी सबसे अधिक तथा उसके पूर्व और पश्चात् कम होता जाता है। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इन दोनों स्तरोंका यापन सूर्य किरणों के ही कारण होता है। यह बात इससे और भी पुष्ट होती है कि इ$_1$-स्तरका दोपहरका यापन शरद ऋतुमें कम रहता है परन्तु जैसे-जैसे गर्मी बढ़ती जाती है यह बढ़ता जाता

है और अन्तमें ग्रीष्म ऋतुमें सबसे अधिक हो जाता है। इन दोनों स्तरोंमें सूर्यास्तके बाद रातको वही यापन बना रहना चाहिये जो दिनके समय उत्पन्न हुआ था परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं होता क्योंकि ऋणाणु परमाणुओंके साथ इतनी शीघ्रतासे मिलने लगते हैं कि फ$_1$-स्तर बिलकुल गायब हो जाता है परन्तु इ$_1$-स्तरमें किसी कारणवश कुछ यापन बना रहता है।

हम देखते हैं कि इन स्तरोंका यापन दिनके समयके साथ तथा मौसमके साथ बदलता रहता है। इसके अतिरिक्त यह भी आशा की जाती है कि इनके यापनमें प्रत्येक वर्षमें भी अवश्य कुछ न कुछ परिवर्तन होगा क्योंकि हम जानते हैं कि प्रत्येक वर्षमें सूर्यमें भी काफी परिवर्तन हो जाता है। यह बहुत पहलेसे ज्ञात है कि सूर्य पर जो धब्बे हैं वे घटते बढ़ते हैं। अब रेडियो द्वाराकी गई खोजोंसे यह ज्ञात हुआ है कि सूर्यके इन धब्बोंके साथ-साथ सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणें भी, जो कि आयन मंडलमें यापन उत्पन्न करनेका मुख्य कारण हैं, घटती बढ़ती रहती हैं। न तो सूर्य परके धब्बे ही और न पराकासनी किरणें ही आपसमें एक दूसरेको उत्पन्न करनेके कारण हैं वरन् दोनों ही सूर्य पर के उन परिवर्तनोंको बताते हैं जो कि उस पर ११ वर्षके चक्रमें होते रहते हैं। इन सूर्य पर के धब्बोंके निर्दिष्ट की तुलनामें जो कि लगभग २०० वर्षों से
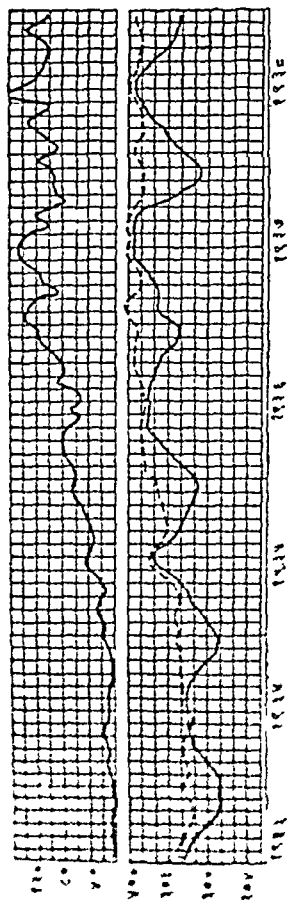
चित्र २१

इ१-स्तरकी चरम आवृत्ति तथा सूर्य धब्बोंके साथ इसका परिवर्तन

आड़ी रेखा भिन्न-भिन्न वर्ष बताती है तथा जहां वर्षकी संख्या लिखी हुई है वहां उस वर्षके जोलाई मास का स्थान है। खड़ी रेखा चित्र के निचले भागमें मैगा साइकिलों में चरम आवृत्ति तथा ऊपरके भागमें सूर्य धब्बों की संख्या बताती है।

इकट्ठा किया जा रहा है, हमारे पास आयन-मंडलका निर्दिष्ट बहुत ही कम समयका है। चरम आवृत्ति-की विधिसे इ$_{५}$-स्तरका यापन सर्व प्रथम सन् १९३१ ई० के प्रारम्भमें मालूम किया गया और तबसे आज तक अर्थात् आठ वर्षके लिये इस स्तरका यापन हमें अच्छी तरहसे ज्ञात है। इन आठ वर्षोंमें ऐसा भी समय आया है जब कि सूर्य पर बहुत कम धब्बे थे तथा ऐसा समय भी जब कि सूर्य पर सबसे अधिक धब्बे थे। यह निर्दिष्ट इंगलैण्डके स्लाउके रेडियो अनुसन्धान स्टेशनसे वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अन्वेषण विभागकी तरफसे इकट्ठा किया गया है। चित्र २१ के नीचेके भागमें यह बतलाया गया है कि इ$_{५}$-स्तरके आयनी करणमें मौसमके साथ तथा प्रतिवर्षके साथ कैसे परिवर्तन होता है। इसमें नीचे वाली रेखा प्रत्येक मौसमके दोपहरके औसत यापनको बतलाती है। इसको देखकर मालूम होता है कि यह रेखा गर्मियोंमें बढ़ जाती है तथा सर्दियोंमें घट जाती है। यह प्रत्येक वर्षके साथ-साथ भी बढ़ती रहती है, तथा इसमें और भी छोटे-छोटे परिवर्तन होते हैं। इन तीनों परिवर्तनोंकी पृथक्-पृथक् खोज करनेके लिये हम इस रेखा को इस प्रकारसे खींच सकते हैं कि इसमें मौसमके साथ जो परिवर्तन होते हैं वे छोड़ दिये जांय। इस प्रकारसे खींची हुई रेखा, चित्रमें टूटी हुई रेखाके रूपमें दिखाई गई है। इस टूटी हुई रेखा

की तुलना करनेके लिये चित्रके ऊपरके भागमें प्रत्येक मास के औसत सूर्य धब्बोंको बताने वाली रेखा भी खींची गई है। यह दोनों रेखायें एक दूसरेसे बहुत मिलती-जुलती हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि इ$_1$-स्तरका यापन सूर्य धब्बोंकी संख्याके साथ-साथ ही नहीं बढ़ता घटता वरन् इस संख्या में प्रत्येक मासमें जो परिवर्तन होते हैं उनका भी प्रभाव इस पर प्रतीत होता है। इस निर्दिष्टकी अच्छी तरहसे जांच करने से ज्ञात हुआ है कि इ$_1$-स्तरमें दोपहरके औसत ऋणाणुओंकी संख्या सन् १९३७-३८ ई० में जब कि सूर्य पर के धब्बे सबसे अधिक थे सन् १९३३-३४ ई० की तुलनामें जब कि सूर्य पर सबसे कम धब्बे थे ५० से ६० प्रतिशत बढ़ गई थी। फ$_1$-स्तरका यापन भी इ$_1$-स्तरकी तरह सूर्य पर सब से अधिक धब्बे होनेके समय सूर्य पर सबसे कम धब्बे होनेके समयकी तुलनामें ५० या ६० प्रतिशत बढ़ गया था। इसका अर्थ यह है कि यदि हम इन स्तरोंके ऋणाणुओंके परमाणुओंमे सम्मिलित होनेके वेगको हमेशा एक ही सा मान लें तो इस समयमें इन स्तरोंका यापन करने वाली सूर्य-किरणोंकी शक्ति, या सूर्यकी ही शक्ति, ५० या ६० प्रतिशत बढ़ जाती है।

इ$_1$-तथा फ$_1$-स्तरके यापनकी तरह, फ$_2$-स्तरके यापन में इतनी सरलतासे परिवर्तन नहीं होता, इसके विपरीत इसमें बहुत-सी पेचीदगियाँ होती हैं जिनको समझना एक

कठिन समस्या है। इसमें तो कोई संदेह नहीं है कि यह स्तर सूर्यके विकिरणके कारण ही उत्पन्न होती हैं जो कि सरल रेखात्मक चलते हैं परन्तु अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ है कि यह विकिरण कोई विद्युत् चुम्बकीय किरणें हैं या कोई कण। इस बातको जाँच करनेके लिये जो प्रयोग सूर्यग्रहणके समय किये गये थे उनके परिणामों-से अभी तक यह बात पूरी तरह तै नहीं हो पाई है। सन् १९३२ ई० में सूर्यग्रहणके समय जो प्रयोग किये गये थे उनमेंसे जापानमें तो जहाँ सूर्य काफी ऊँचा था फ$_2$-स्तरके यापनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु योरपमें जहाँ सूर्य कुछ नीचा था इस स्तरका यापन कुछ कम हो गया था। इससे बर्कनर तथा वेलसने यह परिणाम निकाला कि जिन विकिरणके कारण फ$_2$-स्तरका यापन होता है वे सूर्यग्रहण-के समय भी आते रहते हैं अतः यह विद्युत् चुम्बकीय किरणें नहीं हो सकतीं। इन्होंने यह भी बताया कि जहाँ पर सूर्य कुछ नीचा था वहाँ पर फ$_2$-स्तरका यापन इसलिये कम हुआ सा प्रतीत होता था कि वास्तवमें फ$_1$-स्तरका यापन कम हो गया था।

फ$_2$-स्तरके यापनमें जो विचित्रता है वह इसके दिन भरके यापनके परिवर्तनसे भी देखी जा सकती है तथा इसके साल भरके दोपहरके निर्दिष्टको जाँच करके भी। यद्यपि सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय ऐसा प्रतीत होता है

कि इस स्तरपर सूर्यका प्रभाव पड़ता है परन्तु जब सूर्य काफी ऊपर आ जाता है तब ऐसा प्रतीत होता है कि इसका इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। चित्र १७ से ज्ञात होता है कि इस स्तरमें दोपहरके १२ बजे सबसे अधिक यापन होने के बजाय यह दो समय पर होता है, एक तो ११ बजे सुबह तथा २ बजे दिनमें। इससे भी अधिक फ$_2$-स्तरके यापनकी विचित्रता इसके भिन्न-भिन्न मौसमके यापनकी जाँच करनेसे प्रकट होती है। जैसे कि उत्तरी गोलार्धमें सर्दियोंका दोपहरका यापन गर्मियोंके दोपहरके यापनसे बहुत अधिक होता है, जो कि सूर्यको ही यदि यापनका कारण समझा जाये तो हमारी आशाके बिल्कुल विपरीत है। फ$_2$-स्तरकी इस विचित्रताको समझानेके लिये बहुतसे वैज्ञानिकों ने अपने मत प्रकट किये हैं जो एक दूसरेसे काफी भिन्न हैं। इसको एपिल्टन तथा एन० स्मिथने इस प्रकार समझाया कि ऊपरी वायुमंडलमें काफी अधिक तापक्रम है और यह मौसमके साथ घटता बढ़ता रहता है। गर्मियोंमें वहांके तापक्रमके कुछ अधिक हो जानेके कारण वहांकी हवा फैल जाती है अतः परमाणु तथा आयन (यवन) दूर-दूर हो जाते हैं। यही कारण है कि गर्मियोंमें यद्यपि अधिक परमाणु यापित होते हैं तो भी इस स्तरका यापन कम ज्ञात होता है और ऐसे ही सर्दियोंमें अधिक। इस सम्मतिका विरोध मार्टिन तथा पुलीने किया और उन्होंने बतलाया कि फ$_2$-

स्तरके यापनमें इस विचित्रतासे परिवर्तन होनेका कारण
ऊपरी सतहोंमें जो ओषोण गैस है उसका परिवर्तन होना
है। वर्कनर, वैल्स तथा सीटनने उत्तरी तथा दक्षिणी
गोलार्द्धके निर्दिष्टकी जाँच करके बतलाया कि ऐपिलटन
तथा नेस्मिथके मतानुसार फ$_2$-स्तरके यापनमें मौस-
मके साथ-साथ परिवर्तन नहीं होता वरन् इसमें प्रत्येक वर्ष
के साथ-साथ परिवर्तन होता है। इस सम्मतिको गोडालने
विरोध किया और उन्होंने पूरे निर्दिष्टकी जाँच करके बताया
कि वास्तवमें इस स्तरके जो यापनमें वार्षिक परिवर्तन होते हैं
वे बहुत ही कम हैं परन्तु जो कुछ भी हैं वे इस स्तरके
मौसमके साथके परिवर्तनोंके साथ जुड़ जाते हैं। गोडालने
जो इस स्तरके मौसमके साथके परिवर्तनोंको बताया वह
ऐपिलटन तथा नेस्मिथके सिद्धान्तका समर्थन करते हैं,
क्योंकि इन्होंने बतलाया कि दोनों गोलार्द्धोंमें इस स्तरका
यापन वहाँकी गर्मियोंमें कम तथा सर्दियोंमें अधिक हो
जाता है। इसके बाद बर्कनर तथा वैल्सने यह तो मान
लिया कि इस स्तरके यापन पर मौसमका प्रभाव पड़ता है
परन्तु उनका कहना है कि गोडालके मतानुसार ऐसे वार्षिक
प्रभावके अतिरिक्त जो कि सूर्य पर के धब्बोंके साथ-साथ
बदलता रहता है, इस स्तर पर एक दूसरा वार्षिक प्रभाव
और भी पड़ता है जिस पर सूर्यके धब्बोंका कोई प्रभाव
नहीं पड़ता। अभी तक यह प्रश्न पूरी तरहसे हल नहीं
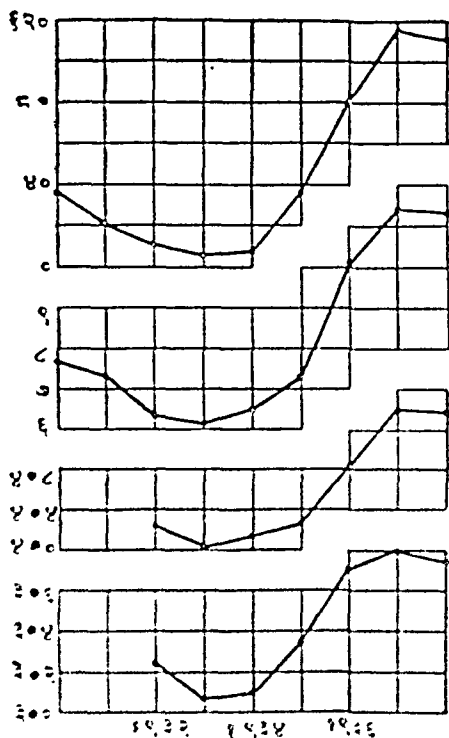
चित्र २२

भिन्न-भिन्न स्तरोंकी वार्षिक औसत-चरम-आवृत्ति और सूर्य धब्बोंकी संख्या। खड़ी रेखा भिन्न-भिन्न वर्ष तथा पड़ी रेखा सबसे ऊपरके भाग

मैं तो सूर्य धब्बोंकी संख्या और बाकी नीचेके
भागोंमें मैगासाईकिलोंमें चरम आवृत्ति बताती है।
सबसे नीचेकी रेखा इ$_e$-स्तरके लिये उससे ऊपर
की फ$_1$-स्तरके लिये तथा उससे ऊपरकी फ$_2$-स्तर
के लिये है।

हुआ है। आशा है कि जैसे-जैसे हमारे पास आयन मंडलका अधिक निर्दिष्ट संग्रह होगा वैसे-वैसे ही इस प्रश्नको हल करना सरल होता जावेगा।

चित्र २२ में यह बतलाया गया है कि इन भिन्न भिन्न स्तरोंका यापन प्रत्येक वर्षके साथ कैसे परिवर्तन करता है। इसके ऊपरके भागमें यह भी बतलाया गया है कि इस अवसरमें सूर्य पर के धब्बोंकी संख्यामें किस प्रकार परिवर्तन होता है। इससे यह प्रत्यक्ष है कि सब स्तरोंका यापन सूर्य पर के धब्बोंकी संख्याके साथ-साथ ही घटता बढ़ता है। इस चित्रमें सब रेखायें सन् १९३३ ई० में न्यूनतम हैं और इसके बाद सन् १९३८ ई० तक यह प्रत्येक वर्ष बढ़ती रहती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि परा-कासनी किरणोंमें, जो आयन मंडलमें यापन उत्पन्न करती हैं तथा सूर्य पर के धब्बोंमें घनिष्ट सम्बन्ध है। सूर्य पर सबसे अधिक धब्बे होनेके समय फ$_2$-स्तरकी चरम आवृत्ति इसकी सूर्य पर के सबसे कम धब्बे होनेके समयकी चरम

आवृत्तिकी तुलनामें लगभग दूनी हो जाती है। इसका अर्थ यह है कि इस समय फ$_2$-स्तरके यापनका घनत्व चार गुणा बढ़ जाता है और उन विशेष पराकासनी किरणों-की शक्ति जिनके कारण इस स्तरकी उत्पत्ति होती है लगभग १६ गुणी हो जाती है।

आयन-मंडलके यापनमें असामान्य परिवर्तन

आयन-मंडलके यापनमें जो परिवर्तन दिनमें सूर्यकी ऊँचाईके कारण, तथा सालमें मौसमके बदलनेके कारण होते हैं उनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी परिवर्तन होते हैं जिनका सूर्यसे हमेशा आने वाली पराकासनी किरणोंसे कोई संबन्ध नहीं होता। इस प्रकारके असामान्य परिवर्तन विद्युतीय तथा चुम्बकीय तूफान और उल्कापातके कारण हो सकते हैं। अब हम इन असामान्य परिवर्तनोंका संक्षेपमें वर्णन करेंगे।

(क) कम वायु दबावके समय तथा विद्युतीय तूफानके समय भागनी-वरणका बढ़ जाना—बहुधा ऐसा देखा गया है कि कम वायु दबावके समय तथा विद्युतीय तूफानके समय इ$_1$-स्तरका यापन असामान्य रूपसे बढ़ जाता है। यह तो हम जानते ही हैं कि विद्युतीय तूफान और वायु दबावका कम होना एक साथ ही होता है परन्तु इनके साथ-साथ यापनमें वृद्धि होना एक निश्चय-सी बात प्रतीत होती है क्योंकि विद्युतीय तूफान आदि तो अधोमंडलमें होते हैं

जिसकी सबसे अधिक ऊँचाई लगभग ७ या ८ मील है और इ$_1$-स्तरका सबसे नीचेका भाग ५५ या ६० मील ऊपर रहता है। सी० टी० आर० विल्सन तथा दूसरे वैज्ञानिकोंने बतलाया कि ऐसा आविष्ट-बादलोंके कारण हो सकता है जो कम वायु दबावके समय पैदा हो जाते हैं, यद्यपि अभी तक यह बिल्कुल ठीक तरहसे नहीं समझाया जा सका है कि इन बादलोंके कारण किस प्रकारसे यापन बढ़ जाता है। कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि कदाचित इन बादलोंके ऊपरके भागमें धनात्मक-आवेश है और इसलिये इन बादलों तथा आयनमंडलके बीचमें एक विद्युत-क्षेत्र उत्पन्न हो जाता है। और यह क्षेत्र इतना प्रबल होता है कि इसकी शक्ति आयन मंडलके नीचे जहाँ पर वायु दबाव भी कम होता है चिनगारी निकलनेकी सीमासे भी अधिक हो जाती है और विद्युत चिनगारीके चलनेसे वहाँका आयनी-करण बढ़ जाता है।

(ख) असामान्य यापन और चुम्बकीय तूफान—बहुधा ऐसा देखा गया है कि जब कभी चुम्बकीय तूफान आते हैं तब उनके साथ-साथ आयनमंडलके यापनमें भी काफी परिवर्तन हो जाता है। यह परिवर्तन अधिकतर फ$_2$-स्तरमें होता है जिसका यापन इस समय नित्यके यापनसे काफी कम हो जाता है परन्तु इ$_1$ तथा फ$_1$-स्तरों पर इस समय कोई विशेष प्रभाव नहीं

पड़ता। इन चुम्बकीय तूफानोंका कारण सूर्यसे आने वाले तथा बहुत वेगसे चलने वाले आवेशितकणों को बतलाया जाता है। यह कण ऊपरी वायुमंडलमें यापन पैदा करते हैं। स्टार्मरके मतानुसार यह आविष्टकण पृथ्वीके चुम्बकत्वके कारण ध्रुवोंके निकट संग्रह हो जाते हैं। यही कारण है कि इन्हीं भागोंमें अधिकतः चुम्बकीय तूफान आते हैं। एपिल्टन तथा दूसरे वैज्ञानिकोंने यह पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है कि जिसके कारण चुम्बकीय तूफान आते हैं उसीके कारण आयनमंडलके यापनमें परिवर्तन होता है। अब यह पूछा जा सकता है कि एक चुम्बकीय तूफानके समय फ$_2$-स्तरके यापनके कम होनेका क्या कारण है। वास्तवमें तो इन कणोंके कारण फ$_2$-स्तरके यापनमें वृद्धि होती है परन्तु क्योंकि यह आविष्टकण बहुत वेगसे चलते हैं अतः इनके इस स्तरके परमाणुओंसे टकराने पर वहाँके तापक्रममें भी वृद्धि हो जाती है जिसके कारण वहाँके वायुके घनत्वमें कमी हो जाती है अतः उस जगह यापन बढ़ने पर भी कम हुआ-सा प्रतीत होता है।

(ग) उल्कापातसे यापनमें वृद्धि—बहुतसे वैज्ञानिकोंने यह बतलाया है कि उल्कापातके समय ऊपरी वायुमंडलके यापनमें वृद्धि हो जाती है। स्केल्टने बतलाया कि उल्कापातमें इतनी शक्ति होती है कि उससे यापन हो सकता है। उन्होंने यह भी बताया कि इस प्रकारसे जो शक्ति मिलती

है वह कभी-कभी सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणोंकी शक्तिके ७ प्रतिशतके बराबर हो जाती है। शेफर और गोडाल तथा मित्रा, स्याम और घोषने जो निर्दिष्ट सन् १९३१ ई० और सन् १९३३ ई० में लियोनार्ड उल्का-पातके समयमें इकट्ठा किया था उससे स्पष्ट है कि इस समयमें यापनकी काफी वृद्धि हो जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उल्कोंकी शक्तिका अधिक भाग आयन-मंडलके नीचेके भागोंको ही यापित करनेके काममें आता है और इनका इसके ऊपरी भागों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

रेडियोकी आँख मिचोनी

कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि एक दूरके रेडियो प्रेषकसे आने वाले संकेत आते-आते एक दम बन्द हो जाते हैं और इस प्रकारसे एक या दो मिनट तक और कभी-कभी तो ४०, ५० मिनट तक बन्द रह कर फिर आने लगते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो रेडियो आँख मिचोनी खेल रहा हो। सुनने वाले यह समझते हैं कि या तो प्रेषक स्टेशनने संकेत भेजना बन्द कर दिया है या उनके ग्राहकमें एक दमसे कुछ खराबी हो गई है। परंतु वास्तवमें इसका कारण है आयन मंडलका असामान्य परिवर्तन। इस घटनाको सर्व प्रथम जर्मनीके एक वैज्ञानिक मोगलने देखा परन्तु बादमें अमेरीकाके एक प्रसिद्ध

ई-स्तरके अन्दर आयनित बादल या यों कहिये कि घने यापन वाली पतली-पतली पट्टियाँ पैदा हो जाती हैं। इन बादलों या पट्टियोंकी ऊँचाई ई-स्तरकी सबसे आयनीकरण वाली जगहसे कुछ कम होती है। क्योंकि असामान्य ई-स्तर दिन तथा रात दोनों समय पाई जाती है अतः इनका कारण सूर्यसे आने वाली किरणोंको नहीं बताया जा सकता। कुछ लोगोंका विचार है कि यह सूर्यसे आने वाले कणोंके कारण उत्पन्न होती हैं। इस प्रकारके यापित बादल जो कुछ मिनटों तक और कभी-कभी तो घण्टों तक रहते हैं ई$_1$-स्तरके अतिरिक्त और जगह भी हैं। ऐपिलटन तथा पेडिंगटनने बतलाया कि यह ५० मीलकी ऊँचाई से १०० मील तक पाये जाते हैं। परन्तु सबसे अधिक यह ७० मीलके लगभग होते हैं। इन बादलोंसे परावर्तित किरणोंकी जाँचसे ज्ञात हुआ कि इनमें कमसे कम १०^{१६} ऋणाणु विद्यमान हैं। इस प्रकारके बादल उल्काओंके कारण हो सकते हैं।

आयन-मंडलकी भिन्न-भिन्न स्तरोंकी उत्पत्तिका कारण

भिन्न-भिन्न स्तरोंके यापनके दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तनोंकी, जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, जाँच करनेसे हम इन स्तरोंकी उत्पत्तिका अनुमान लगा सकते हैं। ई$_1$ तथा फ$_1$-स्तरकी उत्पत्ति सूर्यसे आने वाली

पराकासानी किरणोंसे होती है। इन स्तरोंके दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तनोंके अतिरिक्त, सूर्यग्रहणके समय किये गये प्रयोग भी इस बातकी पुष्टि करते हैं। सूर्यग्रहणके समय जब कि सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणें चन्द्रमाके बीचमें आनेसे रुक जाती हैं इन स्तरोंका यापन बहुत घट जाता है। चैपमैनने आयनोंके पुनसंयोगको विचारमें रखते हुए बताया कि यदि इन स्तरोंका यापन पराकासनी किरणोंके कारण ही होता है तो सूर्यग्रहणमें इन स्तरोंका सबसे कम यापन ग्रहणके बीचके समयसे १५ मिनट बाद होगा। और जो निर्दिष्ट बादमें जापान, भारतवर्ष, उत्तरी अमेरीका तथा योरपमें सूर्यग्रहणके समय इकट्ठे किये गये उनसे यह अच्छी तरहसे प्रमाणित हो गया कि सूर्यग्रहणके समय इन स्तरोंका आयनी-करण घटता ही नहीं है बल्कि यह सबसे कम भी बतलाये हुए समय पर ही होता है। फ$_2$—स्तरके लिये जो प्रयोग सूर्यग्रहणके समय किये गये थे उनसे अभी तक यह निश्चय नहीं हुआ है कि इस स्तरका यापन सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणोंसे होता है या आविष्ट-कणोंसे। अधिकतर वैज्ञानिकोंका विचार आजकल यही हो रहा है कि इस स्तरका यापन भी शायद किरणोंके कारण होता है। अब यह पूछा जा सकता है कि आखिर इन किरणोंसे यह भिन्न-भिन्न स्तरें क्यों उत्पन्न हो जाती हैं। इन सूर्यग्रहणके प्रयोगोंके किये जानेके बहुत पहले ही सन्

१९२६ ई० में एम्सटरडमके प्रसिद्ध प्रोफेसर पैनकाकने एक सिद्धांत जो कि डा० साहाके तापीय यापन (Thermal Ionisation) के सिद्धान्त पर निर्भर था प्रतिपादित किया। इसमें इन्होंने बतलाया कि पराकासनी किरणों के कारण ऊपरी वायुके भिन्न-भिन्न गैसोंका किस प्रकारसे यापन हो जावेगा। सन् १९३१ ई० में प्रोफेसर चैपमैन-ने भी लीनार्डके शुरूके कामको विचारमें रखते हुए एक नया सूत्र निकाला जिससे यह ज्ञात हो सकता था कि सूर्य-से आने वाली एकवर्ण किरण (monochromatic ray) के कारण जो ऊपरी वायुमंडलमें ऋणाणु पैदा हो जावेंगे उनका परिवर्तन सूर्यके शिरो-विन्द-कोणके साथ किस प्रकार होगा। प्रोफेसर चैपमैनके सिद्धान्तसे यह मालूम किया जा सकता है कि दिनके भिन्न-भिन्न समयके साथ तथा मौसमके साथ इन स्तरोंके यापनमें किस प्रकार-से परिवर्तन होगा और यह प्रयोग द्वारा ज्ञात किये हुए निर्दिष्टसे बिल्कुल ठीक मिलता है। इस सिद्धांतमें प्रोफेसर चैपमैनने यह मान लिया है कि ऋणाणु एक ही गैससे निकलते हैं चाहे वह नोषजन परमाणु हो, ओषजन पर-माणु हो या ओषजन अणु हो और वह उसी गैससे मिलते भी हैं दूसरीसे नहीं। बादमें प्रोफेसर ऐपिलटनने बताया कि भिन्न-भिन्न ऊँचाई पर इन पृथक्-पृथक् गैसोंमें पराका-सनी किरणोंके शोषणसे जो ऋणाणु उत्पन्न होते हैं शायद

उन्हींसे यह कई स्तरें बनती हैं। चैपमैनके सिद्धांतसे हम उन ऋणाणुओंकी संख्या जो इन स्तरोंमें उत्पन्न हो जाते हैं ठीक-ठीक नहीं बता सकते। परन्तु पैनकाकके सिद्धांतसे यह संख्या ठीक-ठीक ज्ञातकी जा सकती है। हाल ही में प्रोफेसर साहा तथा रामनिवास रायने पैनकाकके सिद्धान्तकी वृद्धि करते हुए यह प्रमाणित कर दिया है कि वास्तवमें चैपमैनका सिद्धांत, पैनकाकके सिद्धांतका ही एक भाग है तथा पैनकाकके सिद्धान्तसे भी भिन्न-भिन्न स्तरोंकी उत्पतिका कारण बड़ी अच्छी तरहसे समझाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी बता दिया है कि चैपमैनके सिद्धांतमें एक वर्णकी किरणके कारण जैसी स्तर उत्पन्न होती है लगभग वैसी ही स्तर एक पूरे वर्णपटके कारण होगी जो एक विशेष लहर-लम्बाईसे आरम्भ होकर चाहें तमाम पराकासनी भागमें फैला हुआ हो।

हाल ही में उल्फ और डैमिंग, प्रोफसर अपिलटनके इस विचारके अनुसार कि यह भिन्न-भिन्न स्तरें वायुमंडलके भिन्न-भिन्न गैसोंमें सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणोंके शोषण होनेसे उत्पन्न होती हैं, आयनमंडलकी इ$_1$, फ$_1$ तथा फ$_2$-स्तरोंकी उपस्थितिका का कारण समझानेमें सफल हुए हैं। इन वैज्ञानिकोंके अनुसार फ$_1$ और फ$_2$स्तरें तो पराकासनी किरणोंके नोषजन परमाणुओंमें शोषण होनेसे तथा इ$_1$-स्तर इनके ओषजन परमाणुओंमें शोषण होनेसे उत्पन्न होती हैं।

$फ_1$ तथा $फ_2$-स्तरोंको उतनी ही ऊँचाई पर माननेके लिए जितनीकी इनकी ऊँचाई प्रयोग द्वारा ज्ञातकी गई है इन वैज्ञानिकोंको यह मानना पड़ा कि ६० मीलके ऊपर वायुमंडलका तापक्रम लगभग ४२५ डिग्री सैण्टीग्रेड हैं। इसी उद्देश्यसे की गई खोजके आधार पर प्रोफसर मित्रा तथा भार ने बतलाया कि सूर्यसे आने वाली किरणोंके, पृथ्वीके वायुमंडलमें १५० मील ऊपर ओषजन अणुमें शोषण होने, ११० मील ऊपर नोषजन परमाणुमें शोषण होने, तथा लगभग ६० मील ऊपर ओसजन परमाणुमें शोषण होनेके कारण यापित स्तरें उत्पन्न हो जावेंगी। यही स्तरें क्रमशः $फ_2$, $फ_1$ तथा $इ_1$-स्तरें हैं। कभी-कभी सूर्य उद्गारके समय जो ड-स्तरमें यापन उत्पन्न हो जाता है उसका कारण भी पराकासनी किरणें ही बताई जाती हैं। यह एक बड़ी रोचक समस्या है और विशेषतः इस लिये कि यह घटना नीची स्तरोंमें होती है। उल्फ और डैमिंग ने इसे भी समझाते हुए बतलाया कि शायद यह पराकासनी किरणोंके उस भागके कारण होती है जो २३०० अंग्स्ट्राम-से २८०० अंग्स्ट्रामके बीचमें पड़ती हैं, और यापनकी उत्पत्ति ओषोणके प्रकाश-रसायनिक-खंडनके कारण होती है जो कि ४० मील ऊपर काफी मात्रामें विद्यमान समझा जाता है।

अध्याय ५

वायुमंडलका तापक्रम

सबसे पहिले वायुमंडलका तापक्रम निकालनेका उद्योग ग्लासगोके प्रोफेसर विलसन ने सन् १७४६ ई० में किया था। उन्होंने तापक्रम मापक यंत्रोंको पतङ्गोंमें बाँध कर ऊपर उड़ाया और उनके द्वारा ऊपरी वायुमंडलका तापक्रम निकाला। जैसा कि हम पूर्व प्रकरणमें वर्णन कर आये हैं उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें गुब्बारोंकी सहायतासे आत्म-लेखक तापमापक यंत्रोंका प्रयोग होने लगा और इस शताब्दीके उत्तरार्द्धमें लोगोंने वैज्ञानिक यंत्र लेकर स्वयं गुब्बारेमें ऊपर उड़ कर वहाँके तापक्रम आदिका पता लगाना आरम्भ किया। गत शताब्दीके वैज्ञानिक अपने प्रयोगोंसे इस परिणाम पर पहुँचे कि वायुमंडलमें हम जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते जावेंगे तापक्रम ८ डिग्री सेण्टीग्रेड प्रति मीलके हिसाबसे कम होता जावेगा।

हम जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं तापक्रम क्यों कम होता जाता है?

यह बात भली भाँति विदित है कि सूर्यकी किरणें हमारे वायुमंडलके नीचेके भागको बिना गरम किये ही एक

सिरेसे दूसरे सिर तक पार कर जाती हैं क्योंकि वायुमंडलके मुख्य भाग ओषजन तथा नोषजन सूर्यकी रोशनीके अधिकतर भागके लिये पारदर्शी है। परन्तु पृथ्वीकी बात दूसरी है। जब किरणें धरातल पर पड़ती हैं तो यह खूब गरम हो जाती है; और यह उष्ण धरातल अपने समीपकी वायुको भी गरम कर देता है। यह गरम वायु अपने ऊपरकी वायुसे हल्की होनेके कारण ऊपर उठती है। ज्यों-ज्यों यह ऊपर उठती है यह वायुमंडलके ऐसे भागमें पहुँचती है जहाँ कि वायुका दबाव कम होता जाता है जिसके फल स्वरूप यह फैल जाती है और ठंडी हो जाती है, क्योंकि यह एक अत्यन्त प्रसिद्ध सिद्धान्त है कि वायु दबानेसे गर्म हो जाती है जैसे कि हम प्रतिदिन साइकिलमें हवा भरते समय देखते हैं और फैलनेसे ठंडी हो जाती है। अतः जैसे-जैसे हम ऊपर जावेंगे तापक्रम कम होता जावेगा।

हिसाब लगानेसे पता चला है कि यदि हवाके इस प्रकार ऊपर उठने तथा ठंडे होने आदिकी क्रियामें जो वायुमंडलकी गर्मी है वह इसीमें रहे या यों कहिये कि वायुमंडलकी अवस्था 'ऐडियो बेटिक' रहे तो जैसे-जैसे हम ऊपर जावेंगे तापक्रम १६ डिग्री सैण्टीग्रेड प्रति मीलके हिसाबसे कम होना चाहिये। परन्तु जैसा हम पहले लिख आये हैं यह ८ डिग्री सैण्टीग्रेड प्रतिमीलके हिसाबसे कम होता है। इसका कारण यह है कि हिसाब लगानेमें कुछ ऐसी बातें

मान ली गई हैं जो वास्तवमें ठीक नहीं हैं जैसे कि यह माना जाता है कि वायु बिल्कुल शुष्क है परन्तु वास्तवमें वायुमंडलमें कुछ न कुछ भाप अवश्य बनी रहती है। फिर वायुमंडलकी यह क्रिया एक दम 'ऐडियोवेटिक' भी नहीं हो सकती।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्त तक लोगोंका विचार था कि हम जैसे-जैसे ऊपर जावेंगे तापक्रम ८ डिग्री सैण्टीग्रेड प्रति मील कम होता चला जावेगा यहाँ तक कि यदि कोई लगभग ३०-४० मील तक ऊपर चढ़ जाय तो एक ऐसे स्थान पर पहुँच जायगा जहाँ कि तापक्रम बिल्कुल शून्य होगा। परन्तु यह केवल लोगोंका अनुमान ही था क्योंकि वायुमंडलके इन अगम्य भागोंके तापक्रमका पता लगानेकी उस समय कोई विधि नहीं मालूम थी। सन् १८९९ ई० में गुब्बारोंकी सहायतासे टेसेराइन तथा आसमन ने एक बड़ा प्रसिद्ध आविष्कार किया जो कि विज्ञानके इतिहासमें सर्वदा महत्वपूर्ण रहेगा। इन वैज्ञानिकों ने यह खोज निकाला कि (फ्रांस तथा जर्मनीमें) ७ मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम कम होना अकस्मात बन्द हो जाता है और इसके ऊपर यह लगभग एकसा रहता है। अतः इन्होंने ऊर्ध्वमंडलकी खोजकी। बादमें पृथ्वीके भिन्न-भिन्न स्थानों पर खोज करनेसे ज्ञात हुआ कि वायुमंडलके उस भागकी ऊँचाई जहाँसे तापक्रम स्थिर रहना आरम्भ होती है, या

यों कहिये कि मध्यस्तलकी ऊँचाई, सब जगह एक सी नहीं है। वैज्ञानिकों ने मालूम किया कि मध्यस्तलकी ऊँचाई स्काटलैण्डमें तो ५'७८ मील, दक्षिणी-पूर्वी इंगलैण्डमें ६'६ मील, उत्तरी इटैलीमें ६·८ मील तथा अफ्रिकामें भूमध्यरेखा के पास १०'७ मील है अतः वे इस निर्णय पर पहुँचे कि मध्यस्तलकी ऊँचाई अक्षांशोंके साथ बढ़ती घटती है। यह ध्रुवोंके पास सबसे कम तथा भूमध्य रेखाके पास सबसे अधिक है वैज्ञानिकोंको ऊर्ध्वमंडलके तापक्रममें भी सब जगह समानता नहीं मिली। उन्होंने मालूम किया कि पेट्रोग्रेड पर इसका तापक्रम हिमांकसे ५० डिग्री सैण्टीग्रेड नीचे, उत्तरी इटैलीके पविया पर हिमांकसे ५६ डिग्री सैण्टीग्रेड नीचे, कनाडामें हिमांकसे ७१ डिग्री सेण्टीग्रेड नीचे तथा अफ्रिकाकी विक्टोरिया झील पर हिमांकसे ८० डिग्री सेण्टीग्रेड नीचे रहता है। इससे मालूम होता है कि ऊर्ध्वमंडलकी ऊँचाई तथा तापक्रममें भारी संबन्ध है। कम अक्षांशोंमें ऊर्ध्वमंडलमें ठंडक अधिक पाई जाती है तथा ऊँचे अक्षांशोंमें कम। अतः यदि हमें प्रकृतिमें ऐसी जगहकी खोज करनी हो जहाँ पर सबसे कम तापक्रम हो तथा जहाँ हम जा भी सकते हों तो हमें भूमध्य रेखाके ऊपर ऊर्ध्वमंडलकी तरफ ध्यान देना चाहिये।

पहले तो वैज्ञानिकोंका विचार था कि सब जगह ऊर्ध्वमंडलमें तापक्रम काफी दूरी तक स्थिर रहता है परन्तु सन्

१६१० ई० के लगभग बटेवियामें तापक्रम नापनेसे पता लगा कि विषवत् रेखाके समीपके देशोंमें ऐसा नहीं होता। इन प्रदेशोंमें अधोमंडलमें तो तापक्रम उसी प्रकार कम होता जाता है जैसा ऊँचे अक्षांशोंमें; परन्तु मध्यस्तलमें पहुँचने पर ऊँचे अक्षांशोंकी तरह स्थिर रहने पर धीरे-धीरे बढ़नेके बजाये तापक्रम एक दम बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। बटेवियाके तापक्रमकी इन नापोंका समर्थन बादमें भारतवर्षमें आगराकी वेधशालामें हुआ और हमारे यहाँ एक वैज्ञानिक रामनाथन ने इसका कारण भी ढूंढ निकाला। उन्होंने इस बातको सिद्ध कर दिया है कि इस अन्तरका कारण ऊर्ध्वमंडलमें विभिन्न मात्रामें भापका होना है।

हमारे पाठकोंको मालूम है कि सबसे अधिक ऊँचाई जहाँ तक कि मनुष्य अब तक पहुँचा है लगभग १४ मील है। इसका श्रेय दो अमेरीकाके वैज्ञानिक कैप्टेन ऐन्डर्सन तथा कैप्टेन स्टीवेन्सनको है जो कि ११ नोवम्बर सन् १६३५ ई० में प्रसिद्ध गुब्बारे एक्सप्लोरर द्वितियमें चढ़कर इस ऊँचाई तक पहुँचे। साधारण गुब्बारे लगभग २२ मील तक उड़ाये जा चुके हैं तथा संधानिक गुब्बारे २५ मील तकका संदेश लाकर हम लोगोंको बतला चुके हैं। परन्तु वैज्ञानिकोंके पास कोई ऐसा उपाय नहीं है कि इस ऊँचाईके आगेके वायुमंडलका तापक्रम सीधे-सीधे नाप लेवें। इसके आगेका ज्ञान केवल सूत्रात्मक है जिनकी

कि कोई प्रयोग द्वारा सीधी गवाही नहीं मिल सकती है।

ऊर्ध्वमंडलके आविष्कारके बहुत समय बाद तक लोगोंका यह विचार रहा कि वायुमंडलके ऊँचेसे ऊँचे भाग-में भी लगभग वही तापक्रम रहता है जो कि उस जगह पर ऊर्ध्वमंडलके निम्नतम भागमें है। परन्तु सन् १९२२ ई० में लिन्डामन और डाब्सन ने इस विश्वास पर पानी फेर दिया और लोगोंको इस बातके लिये विवश कर दिया कि वे ऊपरी वायुमंडलके तापक्रमके विषयमें अपने विचारों-को संशोधित करें। उन्होंने उल्काओंकी जाँच करके बत-लाया कि यह हमारे वायुमंडलमें लगभग १०० मील की ऊँचाई पर जलकर दिखने लगते हैं और फिर लगभग २५ मीलकी ऊँचाई पर ओझल हो जाते हैं। इन दो ऊँचाइयों और उल्काओंकी गतियोंके ही निरक्षणसे यह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि लगभग ४० से ६२ मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम २७ डिग्री सेन्टीग्रेड तक हो सकता है। उनका कहना है कि यदि हम यह माने कि इन ऊँचाइयों पर भी तापक्रम वही है जो कि ऊर्ध्वमंडलमें है तो गणितसे यह सिद्ध होता है कि ६० मीलकी ऊँचाई पर उल्काओंको जलानेके लिये वायुका घनत्व वास्तविकसे १०० गुना अधिक होना चाहिये। पर यदि हम तापक्रम लगभग २७ डिग्री सेन्टीग्रेड मान लें तो यह कठिनाई बड़ी सरलता

पूर्वक हल हो जाती हैं। वैज्ञानिकों ने इस तापक्रमका एक स्वतंत्र प्रमाण उल्काओंकी न्यूनतम गतिसे निकाला है। उससे भी यही सिद्ध हुआ है कि ४० मीलके ऊपर तापक्रम लगभग २७ डिग्री सेण्टीग्रेड है।

शब्द तरंगोंके प्रयोगोंसे भी लिण्डामन और डाब्सन-के इन विचारोंका समर्थन होता है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि यदि एक स्थान पर बड़े ज़ोरका धड़ाका हो तो उसका शब्द कुछ दूरी तक तो सुनाई देगा, फिर कुछ दूरी तक नहीं सुनाई देगा और इसके थोड़ा आगे फिर सुनाई देने लगेगा। गत योरोपीय महायुद्धके ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब कि तोपोंका शब्द डोवर जल डमरू-मध्यमें नहीं सुनाई पड़ता था परन्तु लन्दन नगरमें साफ़-साफ़ सुनाई पड़ता था। शब्दोंके इस प्रकार प्रसरणकी ठीक-ठीक खोज पहले पहल वानदवोर्नने सन् १६०४ ई० में वेस्टफैलियामें फोर्ड नामक स्थान पर बारुदके धमाकेसे की। यह संसार में प्रथम पुरुष थे जिन्होंने यह बतलाया कि दूरके स्थानों पर पहुँचने वाला शब्द वह नहीं है जो सीधा-सीधा धरातल पर चलकर अपने उद्गम स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचता है, बल्कि यह एक विशेष कोण पर ऊपरकी ओर चलकर तथा वायुमंडलके ऊपरी भागोंसे टकरा कर लौट आता है। धरातलका वह भाग जहाँ शब्द बिल्कुल सुनाई नहीं देता है और जो दोनों ऐसे भागोंके बीचमें स्थित होता है

जहाँ शब्द सुनाई पड़ता है निःशब्द कटिबन्ध कहलाता है। वानडवोर्नने वायुमंडलके भिन्न भिन्न गैसोंके परिमाणकी गणनाकी सहायतासे बताया कि लगभग ४५ मीलकी ऊँचाई पर उदजनकी अधिकता होगी। उनका कहना था कि इस वायुमंडलमें जहाँ उदजनकी अधिकता है शब्द तरंगोंकी गति चार गुनी हो जायगी और इसलिये यह लगभग ३० डिग्रीका कोण बनाती हुई धरातल पर लौटकर आवेंगी। महायुद्धके बाद अन्तर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष संघने इन विचारोंको सीधे-सीधे प्रयोगोंकी कसौटी पर जाँचा। महायुद्धकी बची हुई बारूदका एक बड़ा-सा ढेर लगाया गया और उसमें आग लगाकर एक बड़े ज़ोरका धड़ाका किया गया। इस स्थानके चारों ओर निरक्षक खड़े किये गये थे। इनके पास समय जानने तथा शब्दकी लहर मालूम करनेके सुग्राहक यन्त्र थे। उन्होंने शब्द पहुँचनेके समयको मालूम किया। इनसे यह सिद्ध हो गया कि वानडवोर्नका सिद्धान्त ठीक नहीं है क्योंकि शब्दोंके पहुँचनेके समय उनके सिद्धान्तसे बतलाये गये समयोंसे बहुत ही कम थे। इसी समय लिन्डामन तथा डाब्सनके विचार प्रकाशित हुए जिनसे कि इस प्रश्नका उत्तर सरलता पूर्वक मिल गया। कुछ ही समय बाद व्हिपुल ने बतलाया कि यह शब्द तरंगें १२ डिग्रीसे २० डिग्रीकी और कभी-कभी ३५ डिग्री तककी कोण बनाती हुई आती हैं। यह अपने प्रयोगोंसे इस

निष्कर्ष पर पहुँचे कि शब्द तरंगे लगभग २५-४० मीलकी ऊँचाईसे लौट कर आती हैं और वायुमंडलके इस भागमें तापक्रम ८० डिग्री सेण्टीग्रेडसे कम नहीं है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि इन परिणामोंको अभी तक सभी लोग माननेके लिये तैयार नहीं है। हाल ही में लिन्कने सांध्यद्युतिके समय शिरोविन्द पर आकाशकी चमकके परिवर्तनोंको नाप कर ह्विपुल आदिके विचारोंका समर्थन किया है।

कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि ४५ मीलके ऊपर तापक्रम फिर घटने लगता है। इसका प्रमाण रात्रिमें चमकने वाले बादलोंसे मिलता है। यह बादल ५० मीलकी ऊँचाई पर पाये जाते हैं। कुछ लोगोंका विचार है कि यह वास्तवमें बादल नहीं है बल्कि ज्वालामुखी पर्वतोंसे निकले हुए धूलकणोंके समूह हैं। यद्यपि इन बादलोंके परिवर्तनों तथा पृथ्वी पर ज्वालामुखी आदिकी हलचलोंसे काफ़ी संबंध मालूम होता है परन्तु इससे यह ठीक-ठीक नहीं समझाया जा सकता कि आख़िर यह बादल केवल ५० मीलके लगभग ही क्यों होते हैं तथा और जगहों पर क्यों नहीं पाये जाते। हम्फ्रीज़का कहना है कि यह बादल ही हैं, तथा यह हिम-मणिभके बने हुए हैं। इनका सूक्ष्मकण उत्पन्न करने वाली क्रियाओंसे इतना घनिष्ट सम्बन्ध केवल इसलिये है कि कणोंकी सहायतासे बादल बड़ी सरलतासे बन जाते हैं।

इनका कहना है कि वहाँका तापक्रम लगभग हिमांकसे ११२ डिग्री सेण्टीग्रेड कम है। व्हिपुलका भी कहना है कि क्योंकि ४० मीलके ऊपर उल्काओंको जलकर टुकड़े-टुकड़े होते हुए बहुत कम देखा गया है अतः ५० मीलके समीपके भागोंका तापक्रम काफ़ी कम होना चाहिये।

इसके बाद लगभग ६० मील ऊपर तापक्रम फिर बढ़ने लगता है। इसका पता हमको आयन-मंडलकी इ१-स्तरके ऋणाणुओंकी संघर्षसंख्या निकालनेसे चलता है। इससे प्रतीत होता है कि ६० मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम लगभग ३० डिग्री सेण्टीग्रेड है। वेलो तथा मार्टिनने इसका पता रेडियो तरंगोंकी अन्तर क्रियासे और वेगार्ड तथा रोसेलैंडने ज्योतियोंके वर्णपटमें नत्रजनकी रेखा समूहोंकी जाँच करके लगाया। रोसेलैंड आदिका कहना है कि लगभग ६६ मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम ७५ डिग्री सेण्टीग्रेडके समीप है। चैयकाकने ज्योतियोंके वर्णपटमें प्रसिद्ध हरी रेखा-की चौड़ाई नापकर बताया कि ऊपरी वायु-मंडलमें १५० मीलके लगभग तापक्रम ८०० डिग्री सेण्टीग्रेडके लगभग है। वायु-मंडलके ऊपरी भागमें इतना अधिक तापक्रम होने का प्रमाण एक और तरहसे भी मिलता है। यह तो हमें अच्छी तरहसे ज्ञात ही है कि पृथ्वी पर अनेक प्रकारके रेडियो धर्मी परिवर्तन होते रहते हैं और इन सबमेंसे हिम-जन उत्पन्न होती रहती है परन्तु हमारे ऊपरी वायुमंडल-

लमें यह बिल्कुल नहीं पाई जाती। इसके अत्यन्त हलके होने के कारण इसे ऊपरी वायु-मंडलमें काफी मात्रामें मिलना चाहिये था, परन्तु वास्तविक बात दूसरी ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह ऊपरी वायुमंडलमें पहुँचती है तो वहाँ पर अत्याधिक तापक्रम होनेके कारण इसके अणुओंकी गति बहुत अधिक हो जाती है और वे हमारे वायुमंडलके बाहर चले जाते हैं।

चित्र २३

वायुमंडलमें ऊंचाईके साथ तापक्रममें परिवर्तन। ऊंचाई किलोमीटरमें तथा तापक्रम आंगस्ट्राम यूनिटमें दिखाया गया है।

हालही में प्रोफसर ऐपिलटन ने आयन-मंडलकी फ$_2$-स्तरके दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तनोंको ठीक प्रकारसे समझानेके लिये यह बतलाया है कि ऊपरी वायु-मंडलमें तापक्रम बहुत अधिक है। उनका कहना है कि १८० मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम ग्रीष्म मध्याह्नमें शरद मध्याह्नकी अपेक्षा तीन से नो गुना तक रहता है। उन्होंने हिसाब लगाने पर बतलाया कि ग्रीष्म मध्याह्नमें इस ऊँचाई पर तापक्रम लगभग १२०० डिग्री सेण्टीग्रेड रहता है। अमेरीकाके एक वैज्ञानिक हुल्बर्ट ने भी कुछ इसी प्रकारका सिद्धान्त प्रचारित किया है। १८० मीलकी ऊँचाई पर बहुत अधिक तापक्रमके होनेका समर्थन आस्ट्रेलियाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक मार्टिन तथा पुलोने भी किया है। उनका कहना है कि इस ऊँचाई पर तापक्रम बारहों महीने १००० डिग्री सेण्टीग्रेडके लगभग रहता है। चित्र २३ में यह बतलाया गया है कि यदि हम ऊपर जाते जावें तो हमें तापक्रममें कैसे परिवर्तन होनेकी आशा करनी चाहिये।

लमें यह बिल्कुल नहीं पाई जाती। इसके अत्यन्त हलके होने के कारण इसे ऊपरी वायु-मंडलमें काफी मात्रामें मिलना चाहिये था, परन्तु वास्तविक बात दूसरी ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह ऊपरी वायुमंडलमें पहुँचती है तो वहाँ पर अत्याधिक तापक्रम होनेके कारण इसके अणुओंकी गति बहुत अधिक हो जाती है और वे हमारे वायुमंडलके बाहर चले जाते हैं।

चित्र २३

वायुमंडलमें ऊंचाईके साथ तापक्रममें परिवर्तन। ऊंचाई किलोमीटरमें तथा तापक्रम आंगस्ट्राम यूनिटमें दिखाया गया है।

हालही में प्रोफसर ऐपिलटन ने आयन-मंडलकी $फ_2$-स्तरके दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तनोंको ठीक प्रकारसे समझानेके लिये यह बतलाया है कि ऊपरी वायु-मंडलमें तापक्रम बहुत अधिक है। उनका कहना है कि १८० मीलकी ऊँचाई पर तापक्रम ग्रीष्म मध्याह्नमें शरद मध्याह्न-की अपेक्षा तीन से नो गुना तक रहता है। उन्होंने हिसाब लगाने पर बतलाया कि ग्रीष्म मध्याह्नमें इस ऊँचाई पर तापक्रम लगभग १२०० डिग्री सेण्टीग्रेड रहता है। अमेरीकाके एक वैज्ञानिक हुल्बर्ट ने भी कुछ इसी प्रकारका सिद्धान्त प्रचारित किया है। १८० मीलकी ऊँचाई पर बहुत अधिक तापक्रमके होनेका समर्थन आस्ट्रेलियाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक मार्टिन तथा पुलीने भी किया है। उनका कहना है कि इस ऊँचाई पर तापक्रम बारहों महीने १००० डिग्री सेण्टीग्रेडके लगभग रहता है। चित्र २३ में यह बतलाया गया है कि यदि हम ऊपर जाते जावें तो हमें तापक्रममें कैसे परिवर्तन होनेकी आशा करनी चाहिये।

अध्याय ६

वायुमंडलकी बनावट

पूर्व प्रकरणोंमें बताई हुई भिन्न-भिन्न विधियोंसे वायु-मंडलकी बनावटके विषयमें हम जो कुछ ज्ञान प्राप्त कर सके हैं उसका वर्णन हम इस अध्यायमें कुछ विस्तारसे लिखेंगे।

पृथ्वीके धरातल पर वायुमंडलकी बनावट

यह तो बहुत समयसे मालूम है कि वायु भिन्न-भिन्न गैसोंका मिश्रण है। पृथ्वीकी सतहके पासकी वायुकी जाँच करनेसे ज्ञात होता है कि इसमें ओषजन तथा नोषजन गैस मुख्य हैं। उद्‌जन गैस भी इसमें बहुत थोड़ीसी मात्रामें हमेशा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त वायुमें और भी बहुतसे गैस विद्यमान हैं जैसे हीलियम (हिमजन) क्रिप्टन (गुप्तम), ज़ीनन (अन्यजन), आर्गन (आलमीम), और नियन (मूहजन) जिन्हें विरल गैस भी कहते हैं, तथा कार्बन-डाई-ऑक्साइड, ओपोण और पानीकी भाप। वायुमंडलमें अशुद्धियोंके रूपमें गंधकका तेजाब, शोरेका तेजाब तथा और भी बहुतसे पदार्थ बहुत ही कम मात्रा-में मिलते हैं। नीचे दी हुई सारिणी १ में जो-जो गैस पृथ्वीकी धरातल पर वायुमें विद्यमान है, अपने अणुक तोल तथा प्रतिशत आयतनके सहित दिखाये गये हैं।

सारिणी १

गैस	अणुक तोल	प्रतिशत आयतन
नोषजन	२८.०२	७८.०६
ओषजन	३२.००	२०.६०
आरगन	३६.६	०.६३७
कार्बन-डाई ऑक्साईड	४४.०	०.२९
पानीकी भाप	१८.०२	परिणामन शील
उदजन	२.०२	०.००३३
नीयन	२०.२	०.००१५
हीलियम्	४.०	०.०००५
क्रिप्टन	८३.०	०.०००१
ज़ोनन	१३०.७	० ०००००५
ओषोण	४८ ०	अंश मात्र

इन गैसोंके अतिरिक्त वायुमंडलमें कुछ आवेशित कण भी हैं जो कि भिन्न-भिन्न अनुपातमें पाये जाते हैं। और बहुत ऊँचाई पर तो स्वतन्त्र ऋणाणु भी काफी मात्रामें मिलते हैं जैसा कि आयन-मंडलकी खोजसे ज्ञात हुआ है।

यद्यपि वायु भिन्न-भिन्न गैसोंका एक मिश्रण है तथापि पानीकी भापको छोड़कर वायुकी प्रतिशत बनावट पृथ्वीके धरातल पर सब जगह एक-सी रहती है। इसके दो कारण

हैं। एक तो पवन अपने साथ बहुत-सी वायुको काफी दूरी तक ले जाता है अतः वायुमंडलको खूब मिलाये रखता है, दूसरे यद्यपि पवन न चले तो भी गैस बहुत जल्दी व्याप्त (Diffuse) हो जाती है अतः वायुमंडलमें कोई असमानता नहीं रहने पाती। वैसे तो वायुमंडलमें ओसजन गैस आयतनमें २०'८१. से २१'०० प्रतिशत तक बदलता रहता है। कारबन-डाई-आकसाईड भी आयतनमें '०३ से '०४ प्रतिशत तक बदलता रहता है यह समुद्र पर अधिक तथा हरियालीके स्थानों पर कम होता है। यह बड़े-बड़े नगरोंमें तो '०४ प्रतिशत तक बढ़ जाता है। और बन्द कमरोंमें तो जहाँ बहुतसे आदमी हों यह '२४ से '९५ प्रतिशत तक बदलता हुआ पाया गया है। वैसे अच्छे हवा-दार कमरोंमें इसे ०.०७ प्रतिशतसे अधिक नहीं बढ़ना चाहिये। वायुमंडलमें सूक्ष्म मात्रामें पाये जाने वाले गैसोंमें पानीकी भाप, सूक्ष्म कण तथा ओपोण गैस कुछ विशेष ध्यान देने योग्य हैं। वायुमण्डलमें पानीकी भापकी मात्रामें भी काफी परिवर्तन होता रहता है परन्तु यह ४'० प्रतिशत से कभी अधिक नहीं होती। मौसमके विपयमें ठीक-ठीक जाननेके लिये वायुमण्डलमें पानीकी भापकी मात्रा जानना अत्यन्त आवश्यक है। इसीके कारण ओस, कुहरा, बादल, वर्षा, ओले तथा बर्फ गिरती हैं जिनका प्रभाव पेड़ पौधों तथा पशु-पक्षियोंके जीवन पर काफी पड़ता है। जब कभी

के अन्दरसे सूर्य प्रकाशके भिन्न-भिन्न प्रकारसे निकलनेसे ही इन्द्र धनुष तथा परिवेष (halo) आदि दिखाई देते हैं, तथा जलकणोंसे बने हुए क्यूमलोनिम्बस बादलोंके कारण ही बिजलीके तूफान आदि आते हैं।

वायुमण्डलमें जो बहुतसे सूक्ष्मकण हैं उनका भी इस की बहुत-सी घटनाओंमें मुख्य भाग रहता है। इन्हींके कारण आकाशमें धुँधलापन छा जाता है तथा पानीकी भाप इन्हींकी सहायतासे कुहरा या बादल आदि बनाती है। सूर्योदय तथा सूर्यास्तसे समय आकाशमें भिन्न-भिन्न प्रकारके रंग भी इन्हींके कारण होते हैं तथा संध्याका गौरवमय सौंदर्य भी इन्हींके कारण है। वायुमण्डलमें इन सूक्ष्म कणोंकी उपस्थितिके कई कारण हैं। ये पृथ्वीके धरातल पर पवन चलनेसे, ज्वालामुखी पर्वतोंके उद्गारसे, उल्काओंके वायुमण्डलमें आकर जल जाने और टुकड़े-टुकड़े हो जानेसे तथा समुद्रकी लहरोंसे उछले हुए पानीके छींटोंके भाप बन जाने पर नमकके सूक्ष्म कणोंके रह जानेसे उत्पन्न होते हैं। आजकल इन सूक्ष्म कणोंकी संख्या भी मालूम की जा सकती है। प्रयोग द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि ऐसे नगरोंमें जहाँ काफी रेत उड़ती हो यह १००,००० प्रति घन सेन्टीमीटर तक पाये गये हैं, तथा एक सिगरेटके धुआँकी फूँकमें लगभग चार करोड़ सूक्ष्म कण होते हैं।

पृथ्वीकी धरातलके पासके वायुमण्डलमें ओषोन भी

बहुत ही कम मात्रामें मिलता है। यह प्रायः एक करोड़में एक भागके बराबर होता है ऊपरी वायुमंडल में ओषोण पृथ्वीकी धरातलकी अपेक्षा काफी अधिक है। वायुमंडलमें ओषोणकी उपस्थिति बहुत ही महत्व रखती है। जैसा कि पहले भी लिख आये हैं इसीके कारण पराकासनी किरणोंका बहुत-सा भाग शोषित हो जाता है और पृथ्वी तक नहीं पहुँचने पाता। यदि यह सब किरणें पृथ्वी तक पहुँच जातीं तो यहाँ प्राणी मात्र-का रहना असंभव हो जाता। कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि इन किरणोंके शोषणके कारण ऊपरी वायुमण्डलमें २० मीलकी ऊँचाईके लगभग तापक्रम काफी बढ़ जाता है और शायद १२५ डिग्री सेण्टीग्रेडके लगभग हो जाता है। भिन्न-भिन्न स्तरों पर ओषोणकी मात्रा नापने पर (जिसके नापनेकी विधि हम पहले ही लिख आये हैं) ज्ञात हुआ कि १४ मीलकी ऊँचाईके नीचे वायुमण्डलके कुल ओषोणका २० प्रतिशत भाग रह जाता है, तथा ओषोण सबसे अधिक मात्रामें लगभग २५ मीलकी ऊँचाई पर है। इसकी मात्रामें दैनिक तथा वार्षिक परिवर्तन भी होता रहता है। शीतोष्ण कटिबन्धमें तो एक दिनसे दूसरे दिनकी मात्रामें बहुत ही परिवर्तन हो जाता है और कभी-कभी तो यह औसत मात्रासे ५० प्रतिशत बदल जाता है। इसके परिवर्तनके साथ-साथ मौसममें भी काफी परिवर्तन हो

जाता है। विशेषतः तापक्रम तथा दबाव पर तो इसका काफी प्रभाव पड़ता है। जब कभी ओपोणकी मात्रा बढ़ जाती है तब तापक्रम तथा दबावमें कमी हो जाती है। ओपोणकी मात्राके साथ-साथ पार्थिव-चुम्बकत्वमें भी परिवर्तन होता हुआ देखा गया है। यह ओपेणकी मात्राके बढ़ जाने पर कुछ-कुछ बढ़ जाता है। ओपोणकी मात्रामें जो वार्षिक परिवर्तन होता है वह उष्ण कटि-बन्धमें तो नहीं मालूम होता, परन्तु उसके बाहरके भागोंमें यह बड़ी अच्छी तरहसे देखा गया है। वहाँ पर इसकी मात्रा फरवरी मार्चके महीनोंमें सबसे कम होती है। इसका परिणाम यह होता है कि यदि हम भूमध्य रेखासे ध्रुवोंकी तरफ जावें तो फरवरी मार्चमें तो हमें ओपोणकी मात्रामें काफी परिवर्तन होता हुआ मिलेगा परन्तु सितम्बर अक्टूबरमें लगभग सब जगह एकसा ही रहेगा। अब यह प्रश्न उठ सकता है कि अन्ततः ओपोण उत्पन्न कैसे होता है तथा मौसमके साथ इसका इतना सम्बन्ध क्यों है। कुछ वैज्ञानिकोंका विचार है कि सूर्यसे आने वाली पराकासनी किरणोंके कारण ओपजन अणु खंडित हो जाते हैं तथा यह फिरसे मिलकर ओपोणकी उत्पत्ति करते हैं। परन्तु कुछ वैज्ञानिकोंका कहना है कि यह ज्योतियों (aurorae) के कारण उत्पन्न होते हैं। वैसे कुछ ओपोण बिजलियोंके कारण भी उत्पन्न हो जाता है। परन्तु अभी तक यह प्रश्न

किलोमीटर ऊँचाई

मिलिमीटर चाप

हाइड्रोजन

नाइट्रोजन

१०० ८० ६० ४० २०

·००५ ·००९ ·०१२ ·०२५ ·०६१ ·४६६ १·६५ ८·०४ ३१·६ १६८ ७६०

२० ४० ६० प्रतिशत आयतन
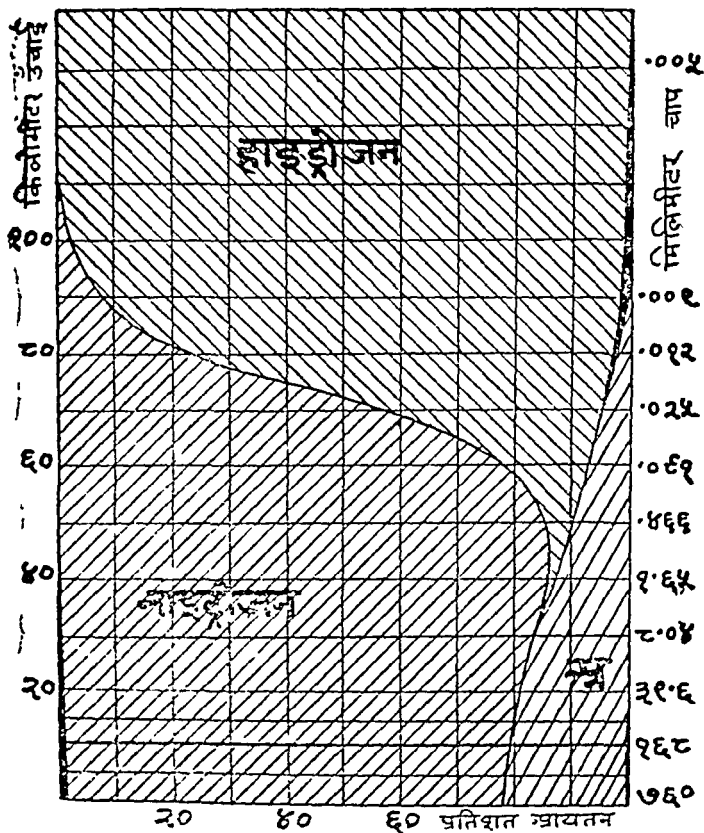
चित्र २४

पूर्णतः हल नहीं होने पाया है ।

ऊपरी वायुमंडलकी बनावट

पहले वैज्ञानिकोंका विचार था कि वायुमंडलमें हवायें आदि अधोमंडल ही में चलती है अतः सारणी १ में दी हुई वायुमंडलकी प्रतिशत बनावट ७ मील तक ही रहती है । और क्योंकि ७ मीलके ऊपर जहाँसे ऊर्ध्वमण्डल आरम्भ हो जाता है तापक्रम भी एक-सा रहता है अतः वायुमण्डलकी बनावट भी भिन्न होने लगती है । डाल्टनके सिद्धान्तानुसार यहाँ पर भिन्न-भिन्न गैस अपने आपको इस प्रकारसे जमा लेते हैं कि नीचेकी सतहोंमें तो भारी गैस अधिक मात्रामें हो जाते हैं तथा ऊपरकी सतहोंमें हलके। इसी विचारके आधार पर हेम्फरेने बताया कि ऊपरी वायुमण्डलमें प्रतिशत आयतनमें भिन्न-भिन्न गैस कितने-कितने मिलेंगे । उनके परिमाणोंको रेखा चित्र द्वारा चित्र २४ में दिखाया गया है। यह चित्र १४० किलो-मीटर (लगभग ८७ मील) की ऊँचाई तक वायुमण्डलकी बनावटको बताता है । इसको देखनेसे स्पष्ट है कि जैसे-जैसे हम ऊपर जावेंगे नोषजन तथा ओषजनकी मात्रामें परिवर्तन होता जावेगा और १०० किलोमीटर (६२ मील) के ऊपर तो केवल हाइड्रोजन और थोड़ीसी हीलियमकी मात्राके कुछ नहीं रहेगा । इसके कुछ समय पश्चात् ही चैपमैन तथा मिलनेने बताया कि ऊपरी वायुमण्डलमें हाइड्रोजन
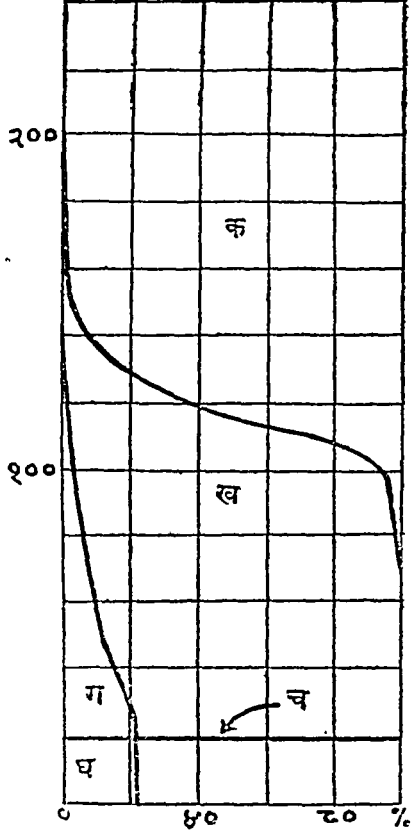
चित्र २५

क—हीलियम, ख—नोपजन, ग— ओपजन, घ—आरगन, च—वह ऊँचाई जहां से गैसो का व्याप्त होना आरम्भ होता है

गैसका होना असम्भव है। इस प्रकारसे विचार करनेके उन्होंने कई कारण बतलाये परन्तु उनमेंसे मुख्य यह था कि ज्योतियोंके वर्णपटकी जाँच करनेसे उसमें हाईड्रोजनकी कोई भी रेखा नहीं मिलती है। ऊपरी वायुमंडलमें हाईड्रोजनकी अनुपस्थिति मानकर उन्होंने भी भिन्न भिन्न ऊँचाई पर इसकी बनावटकी जाँचकी और वे जिस निर्णय पर पहुँचे वह चित्र २५ में दिखाया गया है। इसको भी देखनेसे यह प्रत्यक्ष है कि जैसे-जैसे हम ऊपर जावेंगे नोपजन तथा ओपजनकी मात्रामें परिवर्तन होता जावेगा परन्तु लगभग १५० किलोमीटर (लगभग ९५ मील) के ऊपर हमें केवल हीलियम गैस ही मिलेगा। परन्तु अब ध्रुवोंके निकट तथा दूरकी ज्योतियोंके वर्णपट तथा रातमें आकाशके वर्णपटकी जाँच करनेसे यह पूर्णतः प्रमाणित हो गया है कि ऊपरी वायुमण्डलमें न तो हाईड्रोजन गैस है, न हीलियम! अतः भिन्न-भिन्न वैज्ञानिकोंके ऊपर वर्णन किये हुए विचार बिलकुल असत्य हैं। वर्णपटीय विश्लेषणोंसे ज्ञात हुआ है कि ऊपरी वायुमण्डलमें बहुतसे ओपजन परमाणु तथा नोपजन अणु हैं। ओपजन परमाणु का ऊपरी वायुमण्डलमें उपस्थित होना इन वर्णपटोंमें प्रसिद्ध हरी रेखाके बहुत प्रबल होनेके कारण विचार किया जाता है। परन्तु हरी रेखाकी प्रबलता इस बातका द्योतक निश्चयात्मक रूपसे नहीं है कि ऊपरी वायुमण्डलमें ओपजन

परमाणु बड़ी संख्यामें वर्तमान हैं। यह भी संभव है कि वायुमण्डलमें उपस्थित ओसजन अणुके परमाणुओंमें रूपान्तरित होनेकी क्रियामें जो ओषजन परमाणु बने हो वे हरी रेखाको विकिरण कर पुनः ओसजन अणु बन जावें। और स्वयं ओपजन परमाणु अत्यन्त कम मात्रामें हों। अतः वैज्ञानिकोंका यह भो विचार है कि ऊपरी वायुमण्डल में ओपजन अणु भी हैं। हाल ही में कैपलन तथा बरनार्ड ने बतलाया है कि वायुमण्डलमें काफी ऊँचाई पर नोपजन परमाणु भी उपस्थित है। परन्तु अभी तक इसकी पूर्णतः पुष्टि नहीं हुई।

वैज्ञानिकोंके ऊपरी वायुमंडलमें भिन्न-भिन्न गैसोंकी उपस्थितिके विषयमें जो पहलेके विचार थे वे ही अब असत्य प्रमाणित नहीं हुए हैं वरन् वहाँके तापक्रम तथा पवन आदि चलनेके विषयमें जो विचार थे उन्हें भी अब बदल देना पड़ा है। ४० या ५० मील ऊँचाई पर उल्काओंके पथोंके देखनेसे तथा ५० या ६० मील ऊपर रातको चमने वाले बादलोंकी गति आदिका निरीक्षण करनेसे ज्ञात हुआ कि उन भागोंमें भी काफी तेज़ हवायें चलती हैं। ऊपरी वायुमंडलका तापक्रम भी ७ मीलके बाद स्थिर नहीं रहता बल्कि यह कुछ दूरीके बाद फिर बढ़ने लगता है। तापक्रम ऊपरी वायुमंडलमें किस प्रकार बढ़ता घटता है इसके विषयमें हम पहले ही पाठकों बता आये हैं। इन

सब बातोंका ध्यान रखते हुए मित्रा तथा रक्षित ने बताया कि हमें ६० मीलकी ऊँचाई तक तो हवाओंके चलनेके कारण वायुमंडलकी बनावट लगभग वैसी ही माननी चाहिये जैसीकी पृथ्वीकी धरातलके पास है। इस ऊँचाईके ऊपर भिन्न-भिन्न गैस डालटनके सिद्धान्तानुसार व्याप्त होने लगेंगे। वायुमंडलमें ६० मील ऊपर ३०० डिग्री ऑंग्सट्राम तापक्रम मान कर तथा इसे लगभग • डिग्री श० प्रति मील बढ़ता हुआ मान कर इन्हों ने बताया कि यदि वहाँ केवल नोपजन अणु और ओपजन परमाणु ही हैं तो २२० मीलकी ऊँचाईके लगभग यह दोनों गैस व्यापित साम्य (diffusive equilibrium) में हो जावेंगे। अतः २२० मीलके ऊपर हमें अधिकतः ओपजन परमाणु ही मिलेंगे। इन्होंने यह भी बतलाया कि लगभग १०५ मीलके नीचे यह करीब-करीब पूरे मिले हुए होंगे। यह तो हम पहले ही लिख आये हैं कि इन्हीं गैसोंके यापित होनेसे हमें आयनमंडलकी भिन्न-भिन्न स्तरें मिलती हैं। आयन-मंडलमें लगभग १५० मील ऊपर फ$_2$-स्तर ओपजन परमाणुओंके यापित होनेसे तथा लगभग १०० मील ऊपर फ$_1$-स्तर नोपजन अणुओंके यापित होनेसे उत्पन्न होती है। ई$_1$-स्तरकी उपस्थितिको ठीक-ठीक समझानेके लिये मित्रा तथा भार ने बतलाया कि इन दोनों गैसोंके अतिरिक्त लगभग ६० मील और ८० मीलके बीचमें

ओपजन अणु भी हैं जो इस जगह खंडित होकर ओपजन परमाणु बनाते हैं। इन्हींके कारण यहाँ इ$_1$-स्तरकी उत्पत्ति होती है।

अब यह प्रश्न उठता है कि आखिर और अधिक ऊँचाई पर वायुमंडलकी क्या बनावट है। यह तो अब अच्छी तरह ज्ञात हो गया है कि वायुमंडलके ऊपरी भागोंमें हमें केवल ओपजन परमाणु ही मिलेंगे और वहाँ का तापक्रम भी बहुत अधिक होगा (लगभग १२००) मित्रा तथा बनरजी ने बताया कि जैसे-जैसे हम ऊपर चढ़ते जावेंगे वहाँका घनत्व कम होता जावेगा अन्तमें हम ऐसे भागमें पहुँचेगे जहाँका घनत्व इतना कम हो जावेगा कि एक परमाणु दूसरे परमाणुसे टकरायेगा ही नहीं, और ऐसा भाग ४७० मीलकी ऊँचाईसे ५६० मीलकी ऊँचाईके बीचमें आरम्भ होगा इस ऊँचाई परसे ओपजन परमाणु निकल निकल कर जायेंगे, और पृथ्वीके चारों तरफ भिन्न भिन्न पथ बनाते हुए चक्कर लगावेंगे। यही वायुमंडलका अन्तिम भाग होगा। इस भाग-में जैसे-जैसे हम ऊपर जावेंगे घनत्व बड़ी जल्दी जल्दी कम होता जावेगा, अन्तमें पृथ्वीकी सतहसे २००० मीलकी ऊँचाई पर घनत्व ०.क कण प्रतिघन-सैन्टीमीटर हो जावेगा अर्थात् यहींसे शून्य आरम्भ हो जावेगा क्योंकि शून्यमें भी इतना ही घनत्व माना जाता है। यदि इस बातका भी विचार किया जावे कि लगभग ५०० मीलकी ऊँचाईसे

निकल निकल कर जाने वाले परमाणुओंका वहाँके दूसरे परमाणुओंसे अतिस्थिति स्थापक संघात (super elestic collision) भी होता है तब तो वायुमंडलका अन्तिम भाग लगभग १०००० मील ऊपर तक फैल जावेगा और यहांसे शून्य आरम्भ होगा। हालहीमें हुलबर्ट-ने बतलाया है कि वायुमंडलके इस अन्तिम भागमें चक्कर लगाने वाले परमाणुओंके कारण ही ज्योतियां तथा चुम्बकीय तूफान उत्पन्न होते है।

शब्द-कोष

अन्यजन Xenon
अनुलेखक Recorder
अनुसंधान Research
अणु Molecule
अधोमंडल Troposphere
अवतरणछत्र Parachute
आन्तरिक्ष विक्षोभ Atmospherics
आत्मचालित Automatic
आर्द्रता Humidity
आयनमंडल Ionosphere
आयनीकरण Ionisation
आयतन Volume
आलसीम Argon
आवर्जित Refract
आविष्ट Charged
आवृत्ति Frequency
इनवर Inver
उड्डयन विद्या Aeronotics
उद्‌गार Eruption
उदजन Hydrogen
उपकरण Instruments
उल्के Meteor
उल्कापात Meteoric-Showers
ऊर्ध्वमंडल Stratosphere
ऋणाणु Electrons
एकधा आयनित Singly-Ionised
एकवर्ण किरण Monochromatic ray
एकाणु Protone

ओषजन Oxygen
ओषोण Ozone
ओषोण मंडल Oxonosphere
अंतरिक्ष विज्ञान Meteorology
अंशमापन Calibration
कण Particle
कर्बन-द्वि-ओषिद Carbon di-oxide
कांसा Bronze
किरण-चित्र Spectrum
किरण चित्र दर्शक Spectrograph
कुंडली Circuit
कुमेरु-ज्योति Aurora Austrialis
केश-आर्द्रतामापक Hair Hygrometer
कोण Angle
कैथोड-किरण Cathode ray
क्षैतिज Horizon
गुंजक परिमाणक Buzzer-Transformer
गोण्डोल Gondola
गुप्तम Krypton
गुब्बारा Ballon
गुरुत्वाकर्षण Gravitation
गंधक का तेज़ाब Sulphuric Acid
घड़ी यंत्र Clock work
चरम आवृत्ति Critical frequency
चुम्बकत्व Magnetism
ज्योति Aurorae
झूलन संख्या Frequency
तन्तु Filament
ताप Heat
तापक्रम Temperature
तापक्रम उत्क्रमण Tem-

शोरे का तेजाब Nitric acid

स्तर- Layer

स्फटम् Alluminium

सम Even

समाहरण Concentration

समाई Capaity

सामर्थ्य Power

सिद्धान्त Theory

सूचक गुब्बारे Pilot Ballons

सूक्ष्मदर्शक Microscope

सूर्य धब्बे Sun spots

सुर मिलान Tuning

सुमेरु ज्योति Aurora Borealis

संघर्ष संख्या Collisional Frequency

हिमजन Helium

मुद्रक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग ।